ॐ श्रीपरमात्मने नमः

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,६०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०५, अप्रैल १९७९

चित्र-सूची

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सूर्यार्घ्यदान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
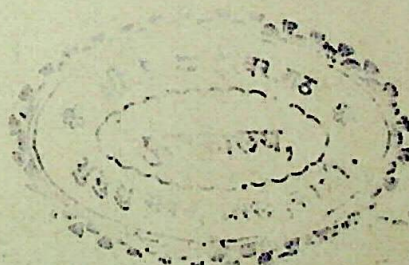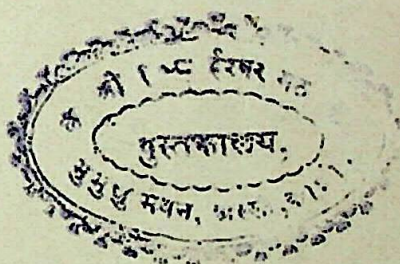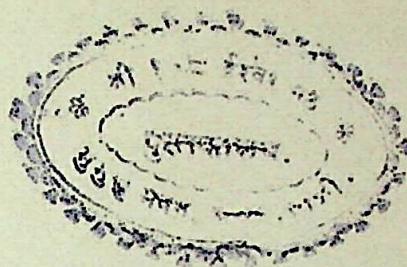
कल्याण
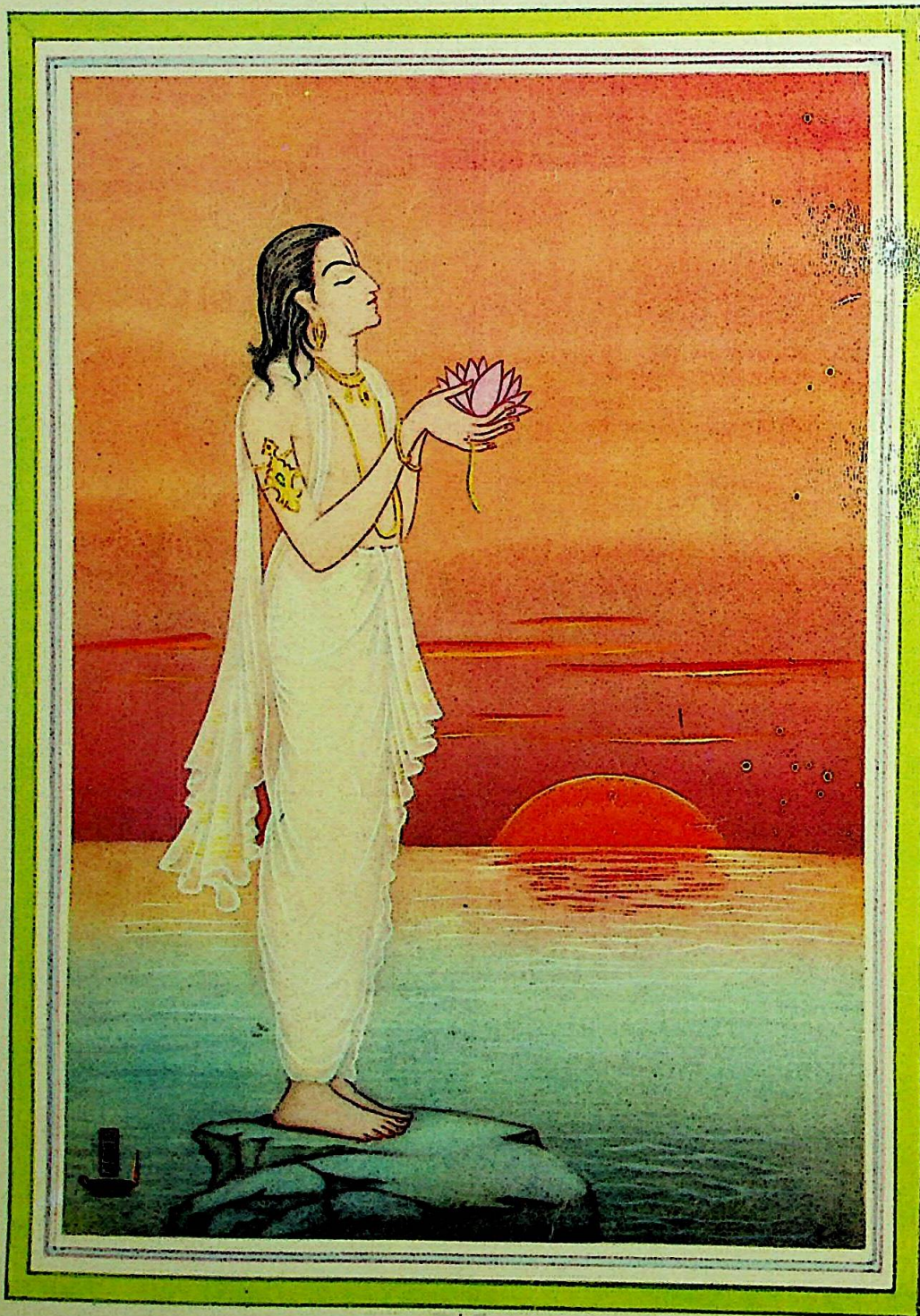
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

वर्ष ५३ } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०५, अप्रैल १९७९ { संख्या ४ पूर्ण संख्या ६२९

सूर्यार्घ्य-नमस्कार-प्रार्थना

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सुपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥
सरक्तवर्णं सुसुवर्णतोयं स्रक्कुङ्कुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम् ।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद ॥
(शिवपुराण, कैलाससं०—६ । ३९-४०)

(प्रभो आदित्य !) सिंदूरवर्णके सुन्दरमण्डलवाले हीरकरत्नादि आभरणोंसे अलंकृत, कमलनेत्र, हाथमें कमल लिये ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि (सम्पूर्ण सृष्टि)के मूल कारण आपको नमस्कार है । भगवन् ! आप सुवर्णपात्रमें रक्तवर्णके कुङ्कुम, कुश, पुष्पमाल्यादिसे युक्त स्वर्णिम जलद्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्घ्यको ग्रहण कर प्रसन्न हों ।

कल्याण-वाणी

प्रत्येक जीवमें भगवान् बस रहे हैं, प्रत्येक जीव भगवान्का शरीर है अथवा भगवान् ही प्रत्येक जीवके रूपमें प्रकट हो रहे हैं—यह निश्चय करके प्रत्येक जीवका सम्मान करो, प्रत्येक जीवको सुख पहुँचाओ और प्रत्येक जीवका हित-साधन करो। किसीको हीन मत समझो, किसीको नीचा मत समझो। हीनता, दीनता, नीचापन समझना चाहो तो अपनेमें समझो; और, है भी यही सचमुच तथ्यकी बात।

जो भगवान्के सामने अपनेमें हीनता-दीनता समझकर सदा नत रहता है, उसीपर भगवान्की कृपा-वर्षा होती है। भगवान्को दैन्य प्रिय है और अभिमान अप्रिय। वे अभिमानको चूर्ण करते हैं और दीनको अपनाते हैं। भगवान् जिसको अपनाते हैं, वही वास्तवमें महान् भाग्यशाली और शुभ चरित्रवान् है। जो भोगोंका गुलाम है, जिसपर अनित्य तथा दुःखयोनि भोगोंका आधिपत्य है, वह अत्यन्त अभागा तथा पापजीवन है। वह यहाँ और वहाँ केवल दुःख ही उत्पन्न करता है और दुःख ही भोगता है।

जो स्वयं अभिमानसे रहित और दूसरोंको मान देनेवाला है, स्वयं आशासे रहित और दूसरोंकी आशाओंको यथासाध्य पूर्ण करनेवाला, अपने दुःखको दुःख न मानकर दूसरेके सुखके लिये सब प्रकारके दुःखोंको वरण करनेवाला है और अपने अधिकारका त्याग करके दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करनेवाला है, वही वस्तुतः सबमें भगवान्को देखकर सबकी सेवा करनेवाला है। 'सबमें भगवान् ही हैं'—ऐसा केवल मुँहसे कहनेवाला नहीं।

अपूर्ण, अनित्य और परिवर्तनशील जगत्प्रपञ्चके प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें कभी शान्ति-सुख नहीं हैं; उनमें निरन्तर अपूर्णताका दुःख, नष्ट हो जानेका दुःख और बदल जानेका दुःख लगा रहता है। सच्चा सुख नित्य निरतिशय परिपूर्णतम, अविनाशी, सदा अखण्ड एकरस एकमात्र श्रीभगवान्में ही है। अतएव उन्हींको जीवनका लक्ष्य बनाकर, उन्हींकी प्राप्तिके साधनोंको अपनाकर तदनुसार जीवन बनाओ।

कोई भी मनुष्य किसी स्थानपर पहुँचना चाहे तो उसके लिये तीन बातें परमावश्यक हैं—जहाँ पहुँचना है, उसको याद रखे; जिस रास्तेसे वहाँ पहुँचा जा सकता है उसी रास्तेको अपनाये और उसी रास्तेपर चलता रहे। लक्ष्य-स्थान स्मृत न रहा, तब तो कुछ भी न होगा। वह जायगा ही कहाँ? लक्ष्य स्मरण भी रहा, पर यदि विपरीत (उल्टे) मार्गको पकड़ लिया, तब भी वह वहाँ नहीं पहुँच सकता; और यदि ठीक रास्तेपर होनेपर भी चले नहीं—रुके ही रहे तब भी पहुँचना सम्भव नहीं है। अतएव लक्ष्यको भूलो मत, निरन्तर स्मरण रक्खो, लक्ष्यसिद्धिके साधनको अपनाओ और उन साधनोंको अपनी शक्तिके अनुसार सावधानीसे करते रहो। (यह क्रम कभी न टूटे।)

भगवान्की ओर मुख करके उनके मार्गपर चलना आरम्भ कर दोगे तो जितना ही आगे बढ़ोगे उतनी ही चलनेकी शक्ति बढ़ेगी, उतने ही अच्छे-अच्छे, सदा सहायता तथा सेवा करनेवाले प्रिय साथी मिलेंगे, उत्तरोत्तर उत्तम सुखमय मार्ग मिलेगा, प्रकाश मिलेगा, स्वस्थता मिलेगी, दैवी-सम्पत्तिपर अधिकार होता जायगा और सहज ही सच्चे शान्ति-सुख बढ़ते रहेंगे; क्योंकि वह मार्ग ही ऐसा है, जिसपर दैवी-सम्पदासम्पन्न पुरुष ही जाते हैं और वहाँ उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक दैवी-सम्पत्तिका ही आदान-प्रदान चलता रहता है।

—'शिव'

तत्त्वचिन्तन—

मोक्षस्वरूप विमर्श

(पूज्यपाद अनन्तश्रीस्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

वस्तुतः मोक्ष निरावरणरूप स्वप्रकाश—निरवच्छिन्न परमानन्दघन परमात्माका ही अन्यतम नाम है। कहा भी गया है—

निवृत्तिरात्ममोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः।
अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृता॥
(सर्व वे० सि० स०)

यहाँ मोह-निवृत्ति, ज्ञान, आत्मा आदि लक्षणोंसे परमात्माको ही मोक्ष बतलाया गया है। श्रीभगवान्‌से श्रीब्रह्माजी भी यही कहते हैं—

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ
द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी॥
(श्रीमद्भा० १० । १४ । २६)

'संसार-सम्बन्धी बन्धन और उससे मोक्ष—ये दोनों नाम अज्ञानसे ही कल्पित हैं। ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मासे भिन्न अस्तित्ववाले नहीं हैं। जैसे सूर्यमें दिन और रातका भेद नहीं है, वैसे ही विचार करनेपर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमें न तो बन्धन है और न मोक्ष ही।'

जिस प्रकार स्वप्रकाशरूप सूर्यकी संनिधि एवं असंनिधिमें ही दिन एवं रातकी कल्पना होती है, उसी प्रकार अज्ञानसे ही ब्रह्ममें बन्धनकी एवं अज्ञानराहित्यमें मोक्षकी कल्पना होती है। मोक्ष और बन्धन उससे (ब्रह्मसे) भिन्न नहीं हैं, यही भाव है। अज्ञान, बन्धनादिकी निवृत्तिके लिये ही तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता होती है। महर्षि गौतमने स्वरचित न्यायसूत्रमें कहा है—

'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।' (न्या० सू० १ । १ । २)

इसके अनुसार तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होती है। इससे प्रवृत्ति एवं जन्मादिसे मुक्त होकर अपवर्ग होता है। इसे ही—**'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः'** (न्या० सू० १ । १ । २२) तक समझाया गया है।

वैशेषिकशास्त्रके अनुसार कर्माभावसे जन्मादिका अभाव हो जाना मोक्ष है—**'तदभावे संयोगाभावो प्रादुर्भावश्च मोक्षः'** (वै० सू० ५ । २ । १८)। योगशास्त्रकी दृष्टिसे भी कर्माभावसे, संयोगाभाव, हान, विवेकख्याति, प्रकृति-पुरुषसंयोगाभाव, पुनः दृश्यसंसर्गाभाव होकर मोक्ष होता है। सांख्योंकी दृष्टिसे प्रकृति ही धर्म, अधर्म, ज्ञानाज्ञान, वैराग्यावैराग्य, ऐश्वर्यानैश्वर्य आदि सात रूपोंके द्वारा पुरुषको बन्धनमें डालती है। फिर वही सत्त्वपुरुषान्यथाख्यातिलक्षण ज्ञानरूपसे उसे मुक्त करती है—

रूपैः सप्तभिरेव बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण॥
(सांख्यसप्तति ६३)

इधर देहात्मवादी चार्वाकोंकी दृष्टिमें मृत्यु ही मोक्ष है। पर वेद एवं उपनिषदोंकी दृष्टिसे परमात्माके तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष होता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(वाजसनेयि सं० ३१ । १८, श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।८, ६।१५)
इत्यादि—

श्रुति कहती है कि अज्ञानान्धकारसे परे आदित्यवर्णके महान् पुरुष परमात्माको जानकर ही प्राणी मृत्युका अतिक्रमण करता है, मोक्षके लिये दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।

योगदर्शनकी दृष्टिसे अनित्य, अशुचि, दुःखपूर्ण, अनात्म वस्तुमें इसके विपरीत नित्य, शुद्ध, सुखरूप आत्माकी भावना अविद्या है (योग० साधनपा० ५)। इस अविद्याके उच्छेदपूर्वक स्वरूपावस्थिति ही मोक्ष है। इस शास्त्रमें चित्तकी प्रमाद, निद्रादि

सभी वृत्तियोंके निरोधसे द्रष्टा आत्माका स्वरूपमें अवस्थान होता है (यो० सू० १ । ३) । अन्यथा शान्त, घोर, मूढादि वृत्तियोंकी ही स्वरूपता होती है । शैव, वैष्णवादिकोंकी दृष्टिमें अपने-अपने इष्टदेवकी उपासना, आराधनासे सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्यादिकी प्राप्तिरूप मोक्ष होता है ।

अद्वैत वेदान्तकी दृष्टिमें मोक्ष

अद्वैत वेदान्तानुसार भक्ति एवं निष्काम कर्मयोग, वर्णाश्रमधर्म, श्रौतस्मार्तकर्मादिके अनुष्ठानसे, शुद्ध सत्त्व, एषणामुक्त, इहलोक-परलोकके सुखोंसे विरक्त, शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, श्रद्धासमाधियुक्त मुमुक्षु पुरुष गुरुको प्राप्त कर उनसे विधिपूर्वक वेदान्तका श्रवण एवं प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न परब्रह्मको ठीक-ठीक जानकर भगवद्भावापन्न ब्रह्मविद् वरिष्ठ कृतार्थ होता है । उपनिषद् कहती है—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
(कैवल्योपनिषद्)

इस श्रुतिमें अक—असुख—दुःखसे सर्वथा असंस्पृष्ट परमात्माको ही नाक (न+अक) कहा है । वह परमात्मा बुद्धिरूपी गुहामें साक्षीरूपसे निहित है । तमोगुण एवं रजोगुणसे मुक्त होकर अज्ञाननाशपूर्वक उसे भली भाँति जानकर यति-संन्यासी लोग मुक्त होते हैं । यह आत्मा ही ब्रह्म, शिव, इन्द्र, विष्णु, अक्षर, राजराज, काल, अग्नि एवं सूर्य-चन्द्र सब कुछ है ।

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥
(कैवल्यो० ९)

वह परब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिके रूपमें आविर्भूत होता है । अधिक क्या, भूत, भव्य, वर्तमानादिमें भी जहाँ जो कुछ है, सब ब्रह्म ही है । श्रुति अन्यत्र भी कहती है कि यह सब कुछ ब्रह्मसे ही उत्पन्न-पालित है और उसीमें लीन होनेवाला है अतः यह परिणाममें भी ब्रह्मरूप है । इसलिये शान्त होकर उस परमात्माकी उपासना, ध्यानादि करना चाहिये—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत ।'
(छान्दोग्योप०)

वेदान्तानुसार रज्जुमें सर्पभ्रमकी तरह आत्मचैतन्यमें जगत्‌का भ्रम होता है । रज्जुस्थानीय सत्य चिदात्मामें सर्वप्राणियोंको तथा सभी प्राणियोंमें अपने आत्मस्वरूपको देखनेसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
संपश्यन् परमं ब्रह्म याति नान्येन हेतुना ॥
(कैवल्योपनिषद् १०)

गीता (६ । २९—३२ तक)में भी प्रायः यही बात प्रतिपादित है, यथा—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥
(क्रमशः)

भगवत्प्राप्ति

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

खेपादास अपनी कुटियामें बैठा स्वगत राम-राम कर रहा है। इसी समय हलधर आकर बोला—'ओ खेपा बाबा! लोग **'सोऽहम्', 'ब्रह्मास्मि'**—ऐसा बोलते हैं, यह सब क्या है?

खेपा—राम राम सीताराम। लोग जिस प्रकार भूतग्रस्त होते हैं, उसी प्रकार भगवान् या ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। भूतग्रस्त प्राणी कहता है—'मैं अमुक हूँ', उसी प्रकार जो ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, वह बोलता है, **'सोऽहम्', 'ब्रह्मास्मि'**। जो भगवदवतार प्राप्त होता है, वह बोलता है—'यदा यदा…'।

हलधर—कहाँ तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक ब्रह्म और कहाँ क्षुद्र कीटवत् प्राणी—**'ब्रह्मास्मि'** या **'सोऽहम्'**—यह स्पर्धाकी वस्तु नहीं है।

खेपा—राम राम सीताराम। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका निर्माण किस बीजसे हुआ है? **'बहु स्यां प्रजायेय।'** 'बहुत होकर मैं अवतरित होऊँगा', **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'**-एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं, **'नेह नानास्ति किंचन'**— इस जगत्में नानात्व कुछ भी नहीं है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**—यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् ब्रह्म ही है, और ब्रह्म ही रहेगा। मूल तत्त्व ब्रह्म ही है। अतः यदि कोई कहता है कि **'ब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्'**—तो इसमें क्षति ही क्या है? राम राम सीताराम।

हलधर—सभी ब्रह्म हैं?

खेपा—हाँ, सीताराम।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च निश्चितम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत्॥
(योगशिखोपनिषद्, चतुर्थ अध्याय)

सुवर्णसे हार, केयूर, नथ आदि आभूषण निर्मित होते हैं, किंतु वे सब सोना ही हैं। उसी प्रकार ब्रह्मोद्भूत जगत् ब्रह्म ही है। राम राम सीताराम।

अच्छा सीताराम, बोलो सोना और कर्ण-कुण्डलमें कोई अन्तर है?

हलधर—नहीं।

खेपा—राम राम। उसी प्रकार ब्रह्म या स्थावर-जङ्गम आदि प्राणिसमूहमें कोई अन्तर नहीं है।

कुण्डलादि अलंकार परिणत सोना नाना नामोंमें प्रचलित है। किंतु वह पूर्वमें सुवर्ण था, पश्चात् भी सुवर्ण है। यह जगत् भी ऐसा ही है। इसके आदि, मध्य और अवसानमें मैं ही हूँ। राम राम सीताराम।

हलधर—तो संसारमें सब कुछ भगवान् ही हैं?

खेपा—राम राम सीताराम। जिस प्रकार मिट्टीसे हाँडी, कलश आदि निर्मित होते हैं, उसी प्रकार सब कुछ भगवद्रूप ही है। राम राम सीताराम!

हलधर—यह तो आश्चर्यमय है! देखनेमें वृक्ष है और इसे भगवान् कहा जाय, यह कैसे सम्भव है?

खेपा—राम राम सीताराम। देखनेमें स्वर्ण-कुण्डल है। क्या उसे सोना नहीं कहेंगे? क्या वह सोना नहीं है? राम राम सीताराम।

यथा कटकशब्दार्थः पृथग्भावो न काञ्चनात्।
न हेम कटकात् तद्वत् जगच्छब्दार्थता परा॥
(महोपनिषद् ४। ४६)

राम राम सीताराम। जिस प्रकार कटक शब्दका अर्थ काञ्चनसे पृथक् नहीं, उसी प्रकार जगत् और ब्रह्म भी अलग नहीं है। राम राम सीताराम।

हलधर—क्या संसारमें जो कुछ है, सभी ब्रह्म है?

खेपा—जय राम सीताराम।

कटकमुकुटकर्णिकादिभेदैः
कनकमभेदमपीष्यते तथैकम्।

सुरपशुमनुजादिकल्पनाभि-
हंरिरखिलाभिरुदीर्यते तथैकः ॥
(विष्णुपु० ३ । ७ । १६)

राम राम सीताराम । सोनेके मुकुट, कुण्डलादिमें भेद होनेपर भी जिस प्रकार एकमात्र कनकमें अभेदत्व है, उसी प्रकार सुर, पशु, मानवादिमें बहुरूपकी कल्पना होनेपर भी एकमात्र भगवान् ही अखिल विश्वरूपमें लीला करते हैं—ऐसा कहा जाता है । राम राम सीताराम !

हलधर—एक हरि इतने क्यों हुए ?

खेपा—जय जय राम सीताराम । लीला-रचनाके लिये एकमात्र भगवान् ही योगमायाकी सहायतासे नाना रूपोंमें क्रीड़ारत होते हैं । सीताराम ।

हलधर—सभी एकमात्र ईश्वर ही हैं, यह कैसे माना जाय ? बहुदर्शन दूर करनेका उपाय क्या है ?

खेपा—राम राम सीताराम । राम राम करके अपने हृदयमन्दिरमें प्रवेश कर पहले एकको देखना होगा । उस एकका साक्षात्कार होनेपर सबमें एक रूपात्मक भाव दृढ़ होगा । सीताराम सीताराम ।

हलधर—राम-राम करके, हृदयमें प्रवेश करके क्या प्राप्त किया जा सकता है ?

खेपा—राम-राम ! प्रकाश, राग-रागिनी, गान, वाद्य, कितने प्रकारके सुननेमें आते हैं । राम-राम ! किंतु उसमें रमनेसे काम नहीं चलेगा । वंशी सुनते-सुनते आगे बढ़ना होगा । वंशी बजानेवालेको पाये बिना उद्धार नहीं है । एक बार वंशीवालेको प्राप्त होनेपर बस, सीताराम ।

हलधर—वंशी सुनते-सुनते क्या होता है?

खेपा—भूत चढ़ जाता है ! तल्लीन होनेपर अन्तरात्मासे स्वर निनादित होता है—**'ब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्'**। राम-राम, सीताराम ।

हलधर—ब्रह्मप्राप्त प्राणी **'ब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्'** कहता है तो भगवत्प्राप्त व्यक्ति क्या कहता है ?

खेपा—राम राम सीताराम ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
(गीता ४ । ७)

हलधर—भूतग्रस्त प्राणीका भूत ओझाद्वारा झाड़े-जानेपर छोड़कर भाग खड़ा होता है । इसमें भी कुछ ऐसा है क्या ?

खेपा—राम राम सीताराम । इसका भूत होता है—कामिनी, काञ्चन, शिष्य, भक्त आदि जनोंका सङ्ग । सीताराम ! मनके अन्तर्मुख होनेसे माँ जाग्रत् होती है । उसी प्रकार ब्रह्मास्मि बोलते-बोलते प्रियतमकी सङ्ग-प्राप्तिके लिये हम यात्रा करते हैं । शरीरात्मबोधकी उत्कट इच्छा होनेपर और उसमें प्रवेश करनेपर मनमें संतोष होता है तथा ऐसी स्थितिमें **'ब्रह्मास्मि'** या **'सोऽहम्'** कहनेसे प्राणी मनमें गर्वानुभव करता है । तब शिष्य या भक्तजन कहते हैं—आप स्वयं भगवान् हैं । जीवोंका कल्याण करनेके लिये आप आविर्भूत हुए हैं । मन इस चाटुकारितासे अब साढ़े तीन हाथकी देहको ही 'मैं' समझने लगता है । कुण्डलिनीकी ऊर्ध्वगति अवरुद्ध होकर उसमें कामिनी, काञ्चनके प्रति स्पृहा जाग्रत् होती है और वह पुनः नरककुण्डमें पतित होता है । मैं-मैं और मेरा-मेरा करता रहता है । यहीं भूत है । राम राम सीताराम ।

हलधर—**'सोऽहम्', 'ब्रह्मास्मि'** बोलनेवालेको भूतग्रस्त होनेके समान क्या लगता है ?

खेपा—राम राम सीताराम । जो लोग शुद्ध आहार, सत्सङ्ग, यथासमय उपासना तथा सर्वदा राम-राम करते हैं, उन्हींको **'सोऽहम्'** प्राप्त होता है । उनके अन्तःकरणसे **'सोऽहम्'** की जागृति होती है और शरीर रोमाञ्चित हो उठता है । ब्रह्मको प्राप्त होनेपर

ऐसा ही होता है। अवतार-प्राप्त होनेपर **'यदा यदा हि धर्मस्य'**......'की ध्वनि उठती है। राम-राम सीताराम।

हलधर—मुखसे **'ब्रह्मास्मि,' 'सोऽहम्'**की ध्वनि करनी पड़ती है ?

खेपा—राम राम सीताराम। मुखसे **'सोऽहम्'** बोलना अहंकार प्रकाश करता है। नीरवके रवमें यह **'सोऽहम्'** नृत्य करता है। **'सोऽहम्'** शब्दसे मन और प्राण पूर्णत्वको प्राप्त होते हैं। जो लोग **'सोऽहम्', 'ब्रह्मास्मि'** बोलते हैं, वे इस **'सोऽहम्'**से अलग होकर बोलते हैं। **'सोऽहम्'** होनेसे वाणी स्तब्ध, जड़ और मूक हो जाती है। सीताराम। यह कहनेकी नहीं, अनुभव करनेकी वस्तु है। ब्रह्म एक और अद्वितीय है। **'ब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्'** किसको कहकर गर्वोन्नत होऊँगा। यह कहने और सुननेमें एक नहीं रहेगा। मात्र तल्लीनता ही रहेगी और आन्तर जगत् शब्दायमान होगा। जो अवतारको प्राप्त होता है और उसको प्रगट करता है, उसे साढ़े तीन हाथके पिंजड़ेमें आकर पूजा और प्रहार दोनों ही लेना होगा। सीताराम-सीताराम।

हलधर—क्या पूजा और प्रहार दोनों ही लेना होता है ?

खेपा—पूजा और प्रताड़ना, प्रकाश और अन्धकारकी भाँति समीपी हैं। आज जो पूजा करते हैं, वे कल ताड़ना करेंगे ही और आज जो प्रहार करते हैं, वे कल पूजा भी करेंगे। यही साधारण नियम है। स्थानविशेषमें इसका व्यतिक्रम होता है। मनके अन्तर्मुख होनेपर और कुण्डलिनीके जगनेपर अन्तः-प्रकाशकी स्थितिमें जो भाव आता है, वह वैसा ही होता है, जैसे संतानकी उत्पत्ति। जिसकी उत्पत्तिके पश्चात् अनेक प्रकारसे सतर्कता रखते हुए उसकी संवर्धना और प्रतिकूल परिस्थितियोंसे उसकी रक्षा की जाती है, वैसे ही उस भावसुतको लोकदृष्टिसे संगोपित रखकर रक्षा अवेक्षणीय होती है। जो कृतकार्य होता है, उसे ब्रह्म या अवतार नहीं छोड़ता। जो ब्रह्मावतार होनेका पाखण्ड और जोर-शोरसे प्रचार करते हैं, उनकी दुर्गतिकी सीमा नहीं होती। यह कहनेकी नहीं, अनुभवकी बात है।

राम-राम—सीताराम ! एक घटना बताता हूँ, सुनो। भगवान् शंकराचार्य काकद्वीपमें वृद्ध ब्रह्मानन्दके पास गये और बोले—'मैं अद्वैतका प्रचारक हूँ। आपके साथ कुछ विचार-विनिमय करूँगा।' वृद्ध ब्रह्मानन्दजीने हँसकर कहा—'क्या तुम अद्वैतवादका प्रचार करोगे ? तुम्हें तो अभी अद्वैतका ज्ञान ही नहीं है। अद्वैतज्ञान-प्राप्तिसे अभी तुम बहुत दूर हो। जिसको अद्वैतका ज्ञान हो जायगा, उसके लिये प्रतिपक्ष कहाँ, विचार कहाँ ! जिसके लिये एकके अतिरिक्त दूसरा नहीं है, वह किसके साथ विचार करेगा ? अच्छा, अच्छा, तुम अद्वैतवादका प्रचार करो।' भगवान् शंकरने उसी समय पुरीधाममें जाकर गोवर्धन-मठकी स्थापना की। पर बंगालमें उन्होंने किसी मठकी स्थापना नहीं की, राम-राम—सीताराम-राम राम।

हलधर—जब ब्रह्मको प्राप्त कर लिया जाता है तब क्या करना होता है ?

खेपा—स्त्री और स्त्री-सङ्गीके सङ्गका परित्याग कर निरापद निर्जन-स्थानमें जाकर जमकर ध्यान करना होता है। उसके पश्चात् उसके लिये जो करणीय होता है, उसके ध्यानकी व्यवस्था उसका देवता ही करता है। राम-राम—सीताराम, जय-जय सीताराम।

(अगले अङ्कमें समाप्त)

परमश्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन

[भगवदर्थ कर्म तथा भगवान्‌की दया]

समस्त प्राणी, पदार्थ, क्रिया और भावका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़कर साधन करनेसे साधकके हृदयमें उत्साह, समता, प्रसन्नता, शान्ति और भगवान्‌की स्मृति सब समय रह सकती है। इससे भगवान्‌में परम श्रद्धा-प्रेम हो जाता है एवं भगवान्‌की प्राप्ति सहजमें हो सकती है। 'जो कुछ भी है, सब भगवान्‌का है और मैं भी भगवान्‌का हूँ, भगवान् सबमें व्यापक हैं (गीता १८। ४६), इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है; मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह सब कुछ भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार भगवान्‌के लिये ही कर रहा हूँ, 'भगवान् ही मेरे परम प्यारे और परम हितैषी हैं'—इस प्रकारके भावसे अपने घर या दूकानके कामको अथवा किसी भी धार्मिक संस्थाके कामको अपने प्यारे भगवान्‌का ही काम समझकर और स्वयं भगवान्‌का ही होकर काम करनेसे साधकको कभी उकताहट नहीं होती, प्रत्येक चित्तमें धैर्य, उत्साह, प्रसन्नता और शान्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। यदि नहीं बढ़ती है तो गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि इसमें क्या कारण है? खोज करनेपर पता लगेगा कि श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही इसमें कारण है। इस कमीकी निवृत्तिके लिये साधकको भगवान्‌के शरण होकर उनसे करुणापूर्वक स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये और भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझना चाहिये। (यह सरल उपाय है।)

गीताप्रचारका काम तो प्रत्यक्ष भगवान्‌का ही काम है, इसमें कोई शङ्काकी बात नहीं है। जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीताके अर्थ और भावको समझकर गीताका प्रचार करता है, उसका उससे उद्धार हो जाता है और भगवान् उसपर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इसके लिये गीताके अठारहवें अध्यायके ६८वें, ६९वें श्लोकोंको देखना चाहिये—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्य-युक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

जो मनुष्य इन दोनों श्लोकोंके अर्थ और भावको भलीभाँति समझ जाता है, उसका तो सारा जीवन ही गीताप्रचारमें व्यतीत होना चाहिये। वर्तमानमें जो कुछ भी गीताका प्रचार हमारे देखने-सुननेमें आता है, उसका भी प्रधान कारण इन दो श्लोकोंके अर्थ और भावको जाननेका प्रभाव ही है।

वस्तुतः गीताप्रचारका कार्य भगवान्‌का ही कार्य है और यह भगवान्‌की विशेष कृपासे ही प्राप्त होता है। रुपये खर्च करनेसे यह नहीं मिलता।

भगवान्‌का काम करना—उनकी आज्ञाका पालन करना—भगवान्‌की सेवा है। वास्तवमें इस कामको भगवान्‌की सेवा समझकर करनेसे अवश्य ही प्रसन्नता तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है। यदि किसीको नहीं मिलती है तो, ऐसा मानना पड़ेगा कि उसने इस काम-को भगवान्‌की सेवा समझा ही नहीं। यदि कोई मनुष्य महात्माको महात्मा जानकर उनके कार्यको, उनकी आज्ञाके पालनको उनकी सेवा समझकर करता है तो उसके हृदयमें भी इतना आनन्द होता है कि वह उसमें समाता ही नहीं, तो फिर भगवान्‌की सेवासे परम

प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त हो—इसमें तो कहना ही क्या है ?

गीताप्रचारका कार्य करनेवालोंके चित्तमें यदि भगवान्‌की स्मृति, प्रसन्नता, उत्साह, प्रेम और शान्ति नहीं रहती है तो उन्हें इसके कारणकी खोज करनी चाहिये एवं जो दोष दीखे, उसे भगवान्‌की दयाका आश्रय लेकर दूर करना चाहिये। भगवान्‌की दया सबपर अपार है, उसको पूर्णतया न समझनेके कारण ही हमलोग प्रसन्नता और शान्तिकी प्राप्तिसे वञ्चित रहते हैं। हमलोगोंपर भगवान्‌की जो अपार—पूर्ण दया है, उसके शतांशको भी हम नहीं समझते हैं। किंतु न समझमें आनेपर भी हमलोगोंको अपने ऊपर भगवान्‌की अपार दया मानते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह आगे जाकर समझमें आ सकती है।

दयाके इस तत्त्वको भलीभाँति समझनेके लिये यहाँ एक दृष्टान्त दिया जाता है—एक क्षत्रिय बालक राज्यकी सहायता और व्यवस्थासे एक महाविद्यालयमें अध्ययन करता था। उसके माता-पिता उसे सदा यही उपदेश दिया करते थे कि इस देशके राजा उच्चकोटिके ज्ञानी, योगी महापुरुष हैं। वे हेतुरहित प्रेमी और दयालु हैं। उनकी हमलोगोंपर बड़ी भारी दया है। हमलोगोंका देहान्त हो जाय तो तुम चिन्ता न करना; क्योंकि महाराजा साहबकी दया तुमपर हमलोगोंकी दयाकी अपेक्षा अतिशय अधिक है। माता-पिताके इस उपदेशके अनुसार वह ऐसा ही मानता था। समय आनेपर उसके माता-पिता चल बसे, परंतु वह बालक दुःखित नहीं हुआ। विद्यालयके सहपाठी बालकोंने उससे पूछा—'तुम्हारे माता-पिता मर गये, फिर भी तुम्हारे चेहरेपर खेद नहीं, क्या बात है ? अब तुम्हारा पालन-पोषण कौन करेगा ?' क्षत्रिय बालकने कहा—'मुझे शोक क्यों होता ? मेरे तो माता-पितासे भी बढ़कर मुझपर दया और प्रेम करनेवाले हमारे परम हितैषी महाराजा साहब हैं। महाराजा साहब उच्चकोटिके भक्त एवं ज्ञानी महापुरुष हैं। मैं तो उन्हींपर निर्भर हूँ।' बालककी यह बात सुनकर वहाँके प्रधानाध्यापकको बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखो, इस बालकके हृदयमें महाराजा साहबके प्रति कितनी श्रद्धा-भक्ति है। वे प्रधानाध्यापक राज्यकी कौंसिलके सदस्य भी थे। एक दिन जब कौंसिलकी बैठक हुई, तब वे भी उसमें उपस्थित थे। उस दिन महाराजा साहबने कहा—'अपने देशमें कोई अनाथ बालक हो तो बतलायें, उसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे सुचारुरूपसे हो जाना उचित है।' कौंसिलके कई सदस्योंने उसी क्षत्रिय बालकका नाम बतलाया। इसपर राजाने सबकी सम्मतिसे उस बालकके लिये खाने-पीनेका सब प्रबन्ध कर दिया और उसके कच्चे घरको पक्का बनानेका आदेश दे दिया। पढ़ाईका प्रबन्ध तो पहलेसे राज्यकी ओरसे था ही।

कुछ ही दिनों बाद जब राजाकी आज्ञासे राज-कर्मचारी उसके कच्चे घरको पक्का बनानेके लिये तोड़ रहे थे, तब उस क्षत्रिय बालकके एक सहपाठीने दौड़कर उसे सूचना दी कि तुम्हारे घरको राजकर्मचारी तोड़कर बरबाद कर रहे हैं। यह सुनकर वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'अहा ! महाराजा साहबकी मुझपर बड़ी दया है। सम्भव है, वे पुराना तुड़वाकर नया पक्का घर बनवायें !' उसकी यह बात सुनकर प्रधानाध्यापक आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे—'देखो, इस बालकको कितना प्रबल विश्वास है ! महाराजापर कितनी अटूट श्रद्धा है।'

पुनः जब दूसरी बार कौंसिलकी बैठकमें प्रधानाध्यापक सम्मिलित हुए, तब राजाने प्रसन्नतापूर्वक एक प्रस्ताव रखा कि 'मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरे संतान नहीं है। अतः युवराजपद किसको दूँ ? इसके योग्य कौन है ?' इसपर प्रधानाध्यापकने

बतलाया—'वह क्षत्रिय बालक गुण, आचरण, विद्या और स्वभावमें सबसे बढ़कर है। वह राजभक्त है और आपपर तो उसकी अपार श्रद्धा है।' इस बातका दूसरे सदस्योंने भी प्रसन्नतापूर्वक समर्थन किया। राजाने सर्वसम्मतिसे उस क्षत्रिय बालकको ही युवराज-पद दे दिया।

दूसरे दिन राजाके मन्त्री और कुछ उच्चपदाधिकारी उस क्षत्रिय बालकके घरपर गये। उन सबको आते देख उस क्षत्रिय बालकने उनका अत्यन्त आदर-सत्कार किया और कहा—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' पदाधिकारियोंने कहा—'महाराजा साहबकी आपपर बड़ी भारी दया है।' बालक बोला—'यह मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि महाराजकी मुझपर अपार दया है। इसी कारण आपलोगोंकी भी मुझपर बड़ी दया है।' पदाधिकारियोंने कहा—'हम तो आपके सेवक हैं, आपकी दया चाहते हैं।' बालक बोला—'आप ऐसा कहकर मुझे लज्जित न कीजिये। मैं तो आपका सेवक हूँ। महाराजा साहबकी मुझपर दया है—इसको मैं अच्छी तरह जानता हूँ।' पदाधिकारियोंने कहा—'आप जो जानते हैं, उससे कहीं बहुत अधिक उनकी दया है।' क्षत्रिय बालकने पूछा—'क्या महाराजा साहबने मेरे विवाहका प्रबन्ध कर दिया है?' तब उन्होंने कहा—'विवाहका प्रबन्ध ही नहीं, महाराजा साहबकी तो आपपर अतिशय दया है।' बालकने पुनः पूछा—'क्या महाराजा साहबने मुझको दो-चार गाँवोंकी जागीर-दारी दे दी है?' पदाधिकारियोंने कहा—'वह तो कुछ नहीं, उनकी आपपर जो दया है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।' इसपर बालकने निवेदन किया—'उनकी मुझपर कैसी दया है, इसे आप ही कृपा करके बतलाइये।' उन्होंने कहा—'आपको महाराजा साहबने युवराजपद दे दिया है। इसलिये हम आपकी दया चाहते हैं।' यह सुनकर क्षत्रिय बालक हर्षमें इतना मुग्ध हो गया कि उसे अपने-आपका भी होश नहीं रहा।

इस दृष्टान्तको अध्यात्मविषयमें यों घटाना चाहिये कि भगवान् ही ज्ञानी महापुरुष राजा हैं। श्रद्धालु साधक ही क्षत्रिय बालक है। उपदेश देनेवाले गुरुजन ही माता-पिता हैं। सत्सङ्गी साधकगण ही सहपाठी बालक हैं। भगवत्प्रेमी महापुरुष ही कौंसिलके सदस्य प्रधानाध्यापक हैं। राज्यकी ओरसे बालकके खान-पानका प्रबन्ध कराये जानेको लोकदृष्टिसे अनुकूल परिस्थितिकी प्राप्ति और घर तुड़वाये जानेको लोकदृष्टिसे प्रतिकूल परिस्थितिकी प्राप्ति समझना चाहिये तथा इन दोनोंमें बालकके द्वारा राजाका मङ्गल-विधान मानकर प्रसन्न होनेको प्रत्येक घटनामें भगवान्का मङ्गलमय विधान मानकर प्रसन्न होना समझना चाहिये। बालकका राजाको सुहृद् मानकर उनपर निर्भरता, श्रद्धा और विश्वास करना ही भगवत्-शरणागतिका साधन समझना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमलोग अपने ऊपर भगवान्की जितनी दया मानते हैं, भगवान्की दया उससे कहीं बहुत अधिक है। भगवान्की हमपर इतनी दया है कि उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि हम उस दयाको जान जायँ तो उस क्षत्रिय बालककी भाँति हमें इतना आनन्द और प्रसन्नता हो कि उसकी सीमा ही न रहे; फिर तो हमें अपने-आपका भी ज्ञान न रहे।

अतः हमें स्वेच्छा, अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे भगवान्का दयापूर्ण मङ्गलमय विधान समझकर और अपनेद्वारा होनेवाली क्रियाओंको भगवान्-का काम तथा भगवान्की परम सेवा समझकर हर समय भगवान्को याद रखते हुए आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

इस प्रकार भगवद्भक्तिके साधनसे साधकके चित्तमें प्रसन्नता, रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, वाणी गद्गद हो जाती है तथा कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। किंतु मनुष्य जब साधन करते-करते सिद्धावस्थामें पहुँच जाता है—भगवान्‌को पा लेता है, तब वह आमोद, प्रमोद, हर्ष आदिसे ऊपर उठकर परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त कर लेता है। जैसे कड़ाहीमें घी डालकर उसमें कचौड़ी सेंकी (छानी) जाती है, वह जबतक कच्ची रहती है तबतक तो उछलती है—उसमें विशेष क्रिया होती रहती है, किंतु जब वह पकने लगती है, तब उसका उछलना कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर तो वह शान्त और स्थिर हो जाती है, इसी प्रकार साधन करते समय साधकमें जबतक कच्चाई रहती है, तबतक वह साधन-विषयक आमोद-प्रमोदमें उछलता रहता है एवं उसके रोमाञ्च, अश्रुपात और कण्ठावरोध होता रहता है; किंतु जब साधन पकने लगता है, तब हर्षादि विकारोंका उफान कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर वह आमोद, प्रमोद, हर्ष आदि विकारोंसे रहित परम शान्त हो जाता है। फिर वह परमात्मामें अचल और स्थिर होकर परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है। (—भक्तियोगका तत्त्व)

नर्मदा-प्रदक्षिणा-माहात्म्य

(लेखक—पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च[1]॥
(मत्स्यपुराण)

छप्पय—

सब सरितनमें श्रेष्ठ नर्मदा अति मनभावन।
विन्ध्य नगनितैं निकसि करति सब जगकूँ पावन॥
रेवा मेकल सुता सोमकी सुता कहावै।
तारे सबकूँ सदा अमृत पय भूमि बहावै॥
शिवतनया गनपति बहिन, जो नित जल सेवन करें।
मज्जन, दरसन, पान जल तैं, पापी जनहू तरें॥

सनातन वैदिक वर्णाश्रम आर्यधर्ममें नदियोंका अत्यधिक माहात्म्य है। वेदोंमें नदियोंकी बड़ी महिमा गायी गयी है। वैसे तो सभी जलाशय पावन हैं, जलका नाम ही तीर्थ है, किंतु गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, चर्मण्वती, क्षिप्रा, वेत्रवती, महानदी, गण्डकी, मन्दाकिनी आदि नदियाँ परम पवित्र मानी जाती हैं। इनमें भी गङ्गाजी, यमुनाजी और नर्मदाजीकी महिमा पुराणोंमें अत्यधिक गायी गयी है। नर्मदाजीका माहात्म्य मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, शिवपुराण तथा स्कन्दपुराण आदि पुराणोंमें आया है। स्कन्दपुराणमें तो रेवाखण्ड नामसे एक स्वतन्त्र खण्ड ही है जिसमें रेवा (नर्मदा)के तटवर्ती अनेक तीर्थोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। एक 'नर्मदापुराण' नामसे उप-पुराण भी है। इन सबमें नर्मदाजीकी महिमा विस्तारसे वर्णित है। स्कन्दपुराणमें तो यहाँतक वर्णन आया है कि गङ्गाजी तो कनखल-हरिद्वारमें ही अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं और सरस्वतीजी कुरुक्षेत्रमें पुण्यप्रदा हैं, किंतु नर्मदाजी तो चाहे ग्राम हो, क्षेत्र हो या घोर अरण्य हो—सर्वत्र

१—श्रीनर्मदाजी सभी नदियोंमें श्रेष्ठ हैं। उनकी उत्पत्ति भगवान् शिवके शरीरसे हुई है। वे स्थावर तथा जङ्गम, चर और अचर, समस्त प्राणियोंको तार सकती हैं। नर्मदा सदा समस्त पापोंको हरण करनेवाली हैं। वे नित्य ही सर्वदेवों-द्वारा नमस्कृत हैं। इनकी स्तुति देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा और सभी करते हैं।

ही परम पुण्यमयी मानी गयी हैं।[1] वहीं आगे कहा गया है—'नर्मदा-नर्मदा' ऐसा स्मरण करनेसे ही एक जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं और जो नर्मदाके दर्शन ही कर ले तो उसके तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं और जो उनमें स्नान कर ले तो उसके सहस्रों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।[2] स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें २३२ अध्यायोंमें नर्मदाजीके समस्त तीर्थोंका विस्तारसे वर्णन है। अन्तके पाँच अध्यायोंमें सत्यनारायणजीकी सुप्रसिद्ध कथा है। नर्मदाके सम्बन्धमें कहा गया हैं कि गङ्गा आदि पावन सरिताएँ तो कल्प-कल्पमें नष्ट हो जाती हैं, किंतु एक नर्मदा ही ऐसी सरिता हैं जो कल्पान्तमें भी नष्ट नहीं होतीं।[3] इसीलिये मार्कण्डेय आदि समस्त ऋषि-मुनि तपस्या करनेके लिये रेवाके तटपर ही निवास करते हैं। कहा है—**रेवातीरे तपः कुर्यात् मरणं जाह्नवीतटे।** नर्मदाजीके दोनों किनारे तपःस्थली हैं। नर्मदा मेकल पर्वत (अमरकण्टक) से निकली हैं और पहाड़ोंमें ही होकर बहती हैं। अन्तमें गुजरातमें भड़ौचके पास जाकर वह पश्चिम समुद्रमें मिलती हैं। इसीलिये अभीतक इनमेंसे कोई नहर नहीं निकाली गयी। अब जबलपुरके समीप नर्मदा बाँध बाँधा जा रहा है। पहाड़ोंमें होकर प्रवाहित होनेके कारण नर्मदाके दोनों किनारोंका सौन्दर्य सर्वत्र ही इतना सुन्दर है कि उस दृश्यको देखकर मनोमयूर नृत्य करने लगता है। नर्मदा-तटवर्ती अरण्य, पर्वत, उपवन, इतने सुन्दर एवं हरे-भरे हैं कि उन्हें निरन्तर देखते ही रहनेका मन करता है। कहीं-कहीं नर्मदा पहाड़से नीचे गिरती हैं तो वहाँका दृश्य देखते ही बनता है। दूधके झागके समान कल्लोल करता हुआ नर्मदाका जल मनको बरबस मोह लेता है। भेड़ाघाट (जबलपुरके पास) जो धूँआधार स्थान है, उसे देखने देश-विदेशके सहस्रों यात्री प्रतिदिन आते हैं। वहाँ नर्मदाजी संगमरमरके पहाड़ोंको चीरकर बहती हैं। पूर्णिमाकी रात्रिमें नौकासे उस दृश्यको देखनेसे अत्यन्त ही आह्लाद होता है। दोनों ओर संगमरमरके स्वच्छ-शुभ्र चिकने पहाड़ ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे किसी चतुर चितेरेने बहुत रच-पचकर किलेकी दीवार खड़ी कर दी हो। गौ-घाटसे जब बंदर-कूदनीतक नौकामें जल-विहारके लिये जाते हैं तो उस अलौकिक छटाको देखकर मन मुग्ध हो जाता है। हमने तो जहाँ-जहाँ भी नर्मदाका दृश्य देखा, वहीं मन ऐसा मुग्ध हो गया मानो इसे देखते ही रहें। ओंकार अमलेश्वरमें नर्मदाजी 'ॐ'कारके आकारमें बही हैं। दोनों ओर नर्मदाके दो प्रवाह हैं; बीचमें पहाड़पर ओंकारेश्वरका मन्दिर है। हमने नौकासे दोनों धाराओंमें होकर ओंकारेश्वरकी परिक्रमा की है। यहाँका दृश्य अलौकिक है।

नर्मदाजीके किनारे लाखों तीर्थ हैं। यही नहीं, नर्मदाका प्रत्येक कंकड़ हीं शंकर है। देशभरमें जितने शिवमन्दिर हैं, उनमें नर्मदाजीसे ही नर्मदेश्वर लाकर स्थापित किये जाते हैं और शिवलिङ्गोंकी प्रतिष्ठा की जाती है। नर्मदेश्वरकी प्रतिष्ठाकी भी आवश्यकता नहीं, वे तो स्वयंप्रतिष्ठित हैं। अन्य शिवलिङ्गोंका निर्माल्य-ग्रहण निषिद्ध है, किंतु नर्मदेश्वर तो शालग्रामके सदृश माने जाते हैं; इनका निर्माल्य निषिद्ध नहीं।

नर्मदाजी साक्षात् शिवजीके शरीरसे प्रकट हुई हैं। शिवजी जब ताण्डवनृत्य कर रहे थे, तब उनके

१—गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥
(स्कन्दपु० रेवा०खं० १०। ३०)

२—स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्। स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं हन्ति रेवा कलौ युगे॥ (स्कन्दपु०)

३—समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः। सदा कल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा॥
गङ्गाद्याः सरितश्चान्याः कल्पे कल्पे क्षयं गताः। एषा देवी पुरा दृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ॥ (स्कन्दपु०)

शरीरसे स्वेद निकला, जिससे नर्मदाजीकी उत्पत्ति हुई। पहले नर्मदादेवी ब्रह्मलोकादि दिव्यलोकोंमें ही अवस्थित थीं। महाराज हिरण्यतेजा पहले-पहल नर्मदा नदीको पृथिवीलोकमें ले आये। तबतक जम्बूद्वीपमें कोई नदी नहीं थी। पितरोंने आकर राजासे नर्मदाको लानेके लिये कहा; क्योंकि पितरोंकी तृप्ति नदीजलसे ही होती है। महाराजने चौदह हजारवर्षतक घोर तपस्याकर शिवजी-को प्रसन्न किया। भगवान् भूतनाथने प्रकट होकर राजासे वर माँगनेको कहा। तब राजाने भूतलपर नर्मदाजीके प्राकट्यकी प्रार्थना की। शिवजीने मकर-वाहिनी नर्मदाको बुलाकर पृथ्वीपर अवतरित होनेकी आज्ञा दी।

नर्मदाने कहा—मेरे अवतरणका कोई आधार होना चाहिये। कौन पर्वत मेरे वेगको धारण करनेमें समर्थ होगा?

शिवजीने सभी पर्वतोंसे पूछा। इसपर उदयाचलने नर्मदाको धारण करनेमें अपनी सहमति दी। तभी नर्मदा उदयाचलकी चोटीपर चरण देकर आकाशसे पृथ्वीपर अवतरित हुईं। इससे सभी पितरोंने प्रसन्नता प्रकट की और वे नर्मदाजलसे तृप्त हुए।

स्कन्दपुराणमें नर्मदाके तीन अवतरण बताये हैं—पहला अवतरण तो आदिकल्पमें महाराज हिरण्य-रेताद्वारा हुआ, दूसरा अवतरण दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें हुआ और तीसरा अवतरण वैष्णवमन्वन्तरमें राजा पुरूरवाके द्वारा हुआ। नर्मदाजीने इस मर्त्यलोकमें आकर परम धर्मात्मा महाराजा पुरुकुत्सुको अपना पति वरण किया। और नदियाँ तो प्रायः पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती हैं, किंतु नर्मदाका प्रवाह उलटा ही है। ये पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहती हैं। ये पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती विन्ध्यप्रदेशके पर्वतोंमें जहाँ-जहाँ गयीं, वहीं-वहीं परमपावन तीर्थ बन गये। जहाँ-जहाँ भगवान् शिवजीके मन्दिर हैं, उनके समीपसे नर्मदा प्रवाहित होती हैं। वहाँ स्नान करनेसे लाख गङ्गा-स्नान-का माहात्म्य बताया है। नर्मदामें कहीं भी स्नान कर लो, वहीं गङ्गा-स्नानका फल प्राप्त होगा।

बाणासुरने नर्मदातटपर सवा लाख मृण्मय शिवलिङ्ग बनाकर उनकी विधिवत् प्रतिष्ठा करके यज्ञके अन्तमें उन्हें एक कुण्डमें (भेड़ाघाटके पास) विसर्जित कर दिया था। इसीलिये उस कुण्डका नाम बाणकुण्ड है। इस कुण्डमें डुबकी लगानेसे शिवजी मिल जाते हैं। उन नर्मदेश्वरकी प्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ती; क्योंकि वे तो पहलेसे ही प्रतिष्ठित हैं। नर्मदाजी पाप काटनेकी छैनी हैं।

स्कन्दपुराणमें लिखा है—इस संसारमें पापसे दूषित चित्तवाले मनुष्योंको उत्तम गति देनेवाली नर्मदासे बढ़कर और कौन-सी दूसरी नदी है? जो पापहारिणी महादेवी नर्मदाका ध्यान करते हैं, उनकी पाप-राशि नष्ट हो जाती है।

नर्मदाकी परिक्रमा

और किसी भी नदीकी विधिवत् परिक्रमा प्रचलित नहीं है। पहले त्यागी विरक्त लोग गङ्गाजीकी परिक्रमा किया करते थे। वह कोई विधिवत् परिक्रमा नहीं होती थी। वे लोग गङ्गा-किनारे पवित्रताके कारण विचरण किया करते थे। लेखकने भी एक बार काशीसे, एक बार प्रयागसे गङ्गाजीकी पैदल परिक्रमा की है। किंतु वह विधिवत् नहीं थी। कभी इस पार आ जाते, कभी उस पार चले जाते। एकमात्र नर्मदाकी परिक्रमा विधिवत् की जाती है। सहस्रों नर-नारी अभीतक पैदल नर्मदाकी परिक्रमा करते रहते हैं। कोई-कोई तो पूरी परिक्रमा दण्डवती करते हैं। साष्टाङ्ग दण्डवत् करके जहाँतक हाथ पहुँचता है, वहाँ एक कंकण रख देते है, फिर खड़े होकर उस कङ्कणसे आगे साष्टाङ्ग करते हैं। बरसातके चार महीने परिक्रमा बंद रहती है। कोई बारह वर्षमें, कोई छः वर्षमें और कोई तीन

वर्षमें परिक्रमा पूरी करते हैं। जहाँसे परिक्रमा उठाते हैं वहीं आकर समाप्त करते हैं। बीचमें नर्मदा पार नहीं करते। एक किनारेसे जाकर रेवासागर भड़ौचके पास उस पार आते हैं और फिर इस पार जहाँसे उठायी थी वहीं आकर समाप्त करते हैं। नर्मदाकी परिक्रमा करनेवालेको निष्किञ्चन होकर परिक्रमाको जाना चाहिये। स्थान-स्थानपर अन्नक्षेत्र लगे हैं।* प्राचीनकालसे धर्मात्मा लोगोंने अन्नके सदावर्त लगा रखे हैं। परिक्रमा-वासियोंके वस्त्रादिकी सुविधा कर रखी है। इससे परिक्रमा-वासियोंको कोई कष्ट नहीं होता। परिक्रमा नर्मदाजीका पूजन करके की जाती है। यथाशक्ति दान-दक्षिणा, ब्राह्मण-भोजन करावें। जहाँतक हो नित्य नर्मदा-स्नान और नर्मदा-जलपान करना चाहिये। जहाँ नर्मदा न मिलें, वहाँके लिये जल साथमें रख लें। स्नान न हो तो नर्मदाजलसे छींटा ही दे लें। नर्मदाको रेवासागर छोड़कर कहीं पार न करे। सहायक नदियोंको पार कर सकते हैं। परिक्रमा-वासीको अत्यधिक संग्रह नहीं करना चाहिये। परिक्रमा करनेवालेको सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि सदाचारके नियमोंका पालन करना चाहिये और परिक्रमा समाप्त होनेपर यथाशक्ति हवन, ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये।

(क्रमशः)

गोरक्षाके उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गो-रक्षासम्बन्धी विचार)

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥

गौका महत्त्व

गोरक्षण, गोपालन और गोसंवर्धन भारतवर्षके लिये नया नहीं है। यह भारतवर्षका सनातन धर्म है। हमारी आर्य-संस्कृतिके अनुसार अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके साधनका मूल हमारी 'सर्वदेवमयी' यह गो-माता है। हमारे अपौरुषेय वेदोंने गौकी बड़ी महिमा गायी है और उसे 'अघ्न्या' (अवध्या) बतलाया है। वैदिक वाङ्मयमें सवा सौसे अधिक बार 'अघ्न्या' पदका प्रयोग हुआ है। अथर्ववेदमें तो पूरा 'गोसूक्त' ही है। उपनिषदोंमें भी 'गोमहिमा' है। महाभारतके अध्याय-के-अध्याय गो-महिमासे भरे पड़े हैं। रामायण, इतिहास, पुराण और स्मृतियोंमें गो-माहात्म्य भरा है। गौके रोम-रोममें देवताओंका निवास माना गया है। उसे 'सुरभि', 'कामधेनु', 'अर्च्या' (पूज्या), 'विश्वकी आयु', 'रुद्रोंकी माता', 'वसुओंकी पुत्री' कहा गया है और 'सर्वदेव-पूज्या' माना गया है। गोपूजा, गोभक्ति, गोमन्त्र आदिसे महान् लाभ बतलाये गये हैं। वह यहाँ सर्व प्रकारसे अभ्युदय करती है और परलोकमें वैतरणी पार कराती है। 'वृषोत्सर्ग'का अत्यन्त माहात्म्य है। गोचर-भूमि छोड़ना बड़ा भारी पुण्य माना गया है। गौका यह आध्यात्मिक तथा धार्मिक महत्त्व चाहे आज किसीकी समझमें न आये, पर है वह निर्विवाद ही आध्यात्मिक जगत्का यह रहस्य भौतिक साधनोंसे सबकी समझमें नहीं आ सकता। श्रद्धालु पुरुष शास्त्र-प्रमाणसे तथा अन्तर्दर्शी महात्मा ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा अनुभवसे ही इसे जान सकते हैं। ऋषि-मुनियोंने उस

* सुनते हैं ओंकारेश्वर तथा शूलपाणिकी झाड़ियोंमें नर्मदा-किनारेके जंगली गोंड-भील जिन परिक्रमावालोंके पास धन-सम्पत्ति होती है, उन्हें लूट लेते हैं। इसलिये वहाँ कोई धन लेकर नहीं जाता।

महत्त्वको समझा था और उसका स्वरूप शास्त्रोंमें सँवार कर हमारे लिये रख दिया है।

गोसेवा सांस्कृतिक और धार्मिक कर्तव्य है

गोसेवा और गोवंशकी उन्नति भारतीय संस्कृतिके अभिन्न अङ्ग हैं। हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख सभी धर्मावलम्बियोंके लिये गोरक्षा धार्मिक दृष्टिसे मुख्य कर्तव्य है। अतएव गोरक्षाका आध्यात्मिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण भी बड़े महत्त्वका है जो कदापि उपेक्षणीय नहीं है।

इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी सर्वविदित है। भारतवर्षमें अत्यन्त प्राचान कालसे ही बड़े-बड़े महापुरुषोंद्वारा गोसेवन और गोपालन होता चला आया है। रघुवंशी महाराजा दिलीप नन्दिनी गौके लिये अपने प्राण देनेको प्रस्तुत हो गये थे। राजा नृगने असंख्य गायें दान दी थीं। भगवान् श्रीरामका अवतार ही 'गोब्राह्मणहितार्थ' हुआ था। उन्होंने दस सहस्र करोड़ (एक अरब) गायें विद्वानोंको विधिपूर्वक दान की थीं—

'गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्।'

(वा० रा० १।१।९४)

भगवान् श्रीकृष्णका बाल्यजीवन गो-सेवामें बीता। उन्होंने स्वयं वनोंमें घूम-घूमकर गो-वत्सोंको चराया। इसीसे उनका नाम 'गोपाल' पड़ा। कामधेनुने अपने दूधसे तथा देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँड़के द्वारा लाये हुए आकाशगङ्गाके जलसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक करके उनको 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया था। द्वारकामें वे पहले-पहल ब्यायी हुई, दुधार, बछड़ोंवाली, सीधी, शान्त, वस्त्रालङ्कारोंसे समलङ्कृत तेरह हजार चौरासी गायोंका प्रतिदिन दान करते थे। (देखिये श्रीमद्भागवत १०।७०।९)

प्राचीन कालकी गो-सम्पत्ति

युधिष्ठिरके यहाँ गायोंके दस हजार वर्ग थे, जिनमें प्रत्येकमें आठ-आठ लाख गायें थीं। लाख-लाख, दो-दो लाख गायोंके तो और भी बहुत-से वर्ग थे।

तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतं शतम्।
अपरे शतसाहस्राद्विस्तावन्तस्तथापरे॥

(महा० विराट० ९।९-१०)

इस गो-विभागकी सारी व्यवस्थाका भार सहदेवपर था। वे गोविज्ञानके महान् पण्डित थे। नन्द-उपनन्दादिके पास असंख्य गौएँ थीं और वे उनका भलीभाँति रक्षण, पालन और संवर्धन करते थे। पिछले बौद्धकालीन भारतमें कितने व्यापकरूपमें गोपालन होता था, इसके लिये यहाँ एक ही प्रमाण पर्याप्त होगा। धनंजय सेठने अपनी कन्याके विवाहमें कुछ गायें देनेकी इच्छासे अपने सेवकोंसे कहा—'जाओ, छोटा गोकुल खोल दो और एक-एक कोसके अन्तरपर नगारा लिये खड़े रहो। एक सौ चालीस हाथकी चौड़ी जगह बीचमें छोड़कर दोनों ओर आदमी खड़े कर दो, जिसमें गायें फैल न सकें। जब सब लोग ठीक हो जायँ, तब नगारा बजा देना।' सेवकोंने ऐसा ही किया। जब गायें एक कोस पहुँचीं तब नगारा बजा, फिर दो कोस पहुँचनेपर फिर बजा, तीन कोसकी लम्बाई और एक सौ चालीस हाथकी चौड़ाईके मैदानमें इतनी गायें भर गयीं कि वे एक-दूसरेके शरीरको रगड़ती हुई चलीं। तब धनंजयने कहा—'बस दरवाजा बंद कर दो। सेवकोंने दरवाजा बंद किया, परंतु बंद करते-करते भी ६०,००० गायें, ६०,००० बैल और ६०,००० बछड़े तो निकल ही गये। अब अनुमान कीजिये, इस छोटे गोकुलमें कितनी गायें रही होंगी। इसी प्रकार गोपालकोंका यह पशुधन गोकुलोंमें लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें था। गायोंके बड़े व्यापारी गौतम कहलाते थे, जिनके पास लाखोंकी संख्यामें गौओंके दल-के-दल होते थे। यह थी हमारी गोसम्पत्ति, और यह था हमारा गोपालन। गायको अब भी गाँवोंके लोग 'धन' कहते हैं। बड़े ही दुःखकी बात है कि उसी गोपालकोंके देशमें आज स्वराज्यके

बाद भी निर्बाध गोवध जारी है और गोरक्तसे भारतकी पवित्र भूमि लाल हो रही है !

गोवध-निषेध, गो-रक्षा, गो-संवर्धनके लिये क्या-क्या करना चाहिये ?

(१) गोवध भारतका कलङ्क है, अतएव कतई गोवधबंदीका कानून सब जगह बन जाय इसके लिये सतत और सबल प्रयत्न करना चाहिये। जबतक सर्वथा गोवधबंदीका कानून सब राज्योंमें न बन जाय, तबतक शान्तिपूर्ण आन्दोलनको शिथिल न होने दिया जाय।

(२) बूढ़ी, बेकाम गायोंके लिये गो-सदनोंकी स्थापना करना-कराना जिनमें गायके अपनी मौत मरनेके समयतक उसके लिये आवश्यक चारे-पानी और चिकित्साकी सुव्यवस्था हो। नस्ल न बिगड़े, इस दृष्टिसे वहाँ गायोंको बरदाया न जाय।

(३) गायकी नस्ल-सुधारका प्रयत्न करना, जिससे गाय प्रचुर दूध देनेवाली हों, बैल मजबूत हों और मरे हुए गाय-बैलोंकी अपेक्षा जीवित गाय-बैलोंका मूल्य बढ़ जाय। इस प्रकार गायको आर्थिक स्वावलम्बी बनाना।

(४) केरल-कलकत्ते आदि शहरोंमें—जहाँ गायके रखनेके लिये पर्याप्त स्थान नहीं है, जहाँ कृत्रिम और निर्दय उपायोंसे दूध निकाला जाता है, बछड़े मरने दिये जाते हैं, दूध सूखते ही गाय कसाईके हाथ बेच दी जाती है, कानूनी प्रतिबन्ध होनेपर म्युनिसिपल्टिकी सीमासे बाहर ले जाकर गाय मार दी जाती है, वहाँ जबतक ये बातें दूर न हों, बाहरसे गायोंको कतई न जाने दिया जाय। स्थानकी सुविधा कराना तथा सरकारके द्वारा ऐसी व्यवस्था कराना, जिसमें गायोंको दिये जानेवाले ये सब कष्ट दूर हों।

(५) गायको भरपेट चारा-दाना मिले—इसके लिये व्यवस्था करना। गोचरभूमि छोड़ना एवं छुड़वाना। नये-नये चारेकी खेती कराना।

(६) वर्तमान पिंजरापोल, गोशालाओंका सुधार करना। और जो पिंजरापोल, गोशाला दयाभावसे केवल बूढ़ी, अपंग गायोंके लिये खोले गये हैं, उन्हें डेरी फार्म न बनाकर उसी कामके लिये रहने देना।

(७) गायोंका गर्भाधान, विशेष दूध देनेवाली गौके पुत्र, बलवान् तथा श्रेष्ठ जातिके साँड़से ही कराना। ऐसे साँड़ोंका निर्माण तथा विस्तार करना, बूढ़े साँड़ोंसे गर्भाधानका काम कतई न लिया जाना।

(८) कसाईखानोंमें मारी हुई गायोंके चमड़े इत्यादिसे बनी हुई वस्तुएँ—जूते, बटुए, कमरपट्टे, बिस्तरबंद, घड़ीके फीते, चश्मेके घर, पेटियाँ, हैंडबेग आदिका व्यवहार न करनेकी शपथ करना-कराना।

(९) गोवधमें सहायक चमड़े, मांस आदिका व्यापार, जिससे गोवध होता है—बिल्कुल न करना।

(१०) गो-सदनोंमें, पिंजरापोलोंमें और सर्व-साधारणके द्वारा भी मरे हुए पशुओंके चमड़े, हड्डी, सींग, केश आदिसे अर्थ उत्पन्न करना और उसे बूढ़ी, अपंग गायोंकी सेवामें लगाना।

(११) ट्रैक्टरोंका व्यवहार न करके या कम-से-कम करके, हल जोतनेका काम केवल बैलोंसे ही लेना तथा रासायनिक खादका उपयोग न करके गोबर, गोमूत्रकी खादसे ही काम लेना और इनकी उपयोगिताका प्रतिपादन करना।

(१२) वेजिटेबल—जमाये तेलकी घीमें मिलावट न हो, इसके लिये उसे अवश्य रंग देनेकी व्यवस्था सरकार-से कराना जिससे शुद्ध घीका महत्त्व अक्षुण्ण रह सके।

(१३) चमड़ा, चर्बी, रक्त, हड्डी आदि जिन-जिन वस्तुओंके लिये गाय मारी जाती है तथा जिन कार्यों, कारखानों, मोटर-गाड़ी आदि वाहनोंमें ये चीजें बरती जाती हैं, उनका पता लगाकर कारखानेवालोंसे तथा इससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य लोगोंसे प्रार्थना करना कि वे इन चीजोंको काममें न लावें।

(१४) यथासाध्य गायके ही दूध, दही, घीका व्यवहार करना और कम-से-कम एक गायका पालन करना।

(१५) इन कार्योंकी सम्पन्नताके लिये गोरक्षिणी समितियोंका सर्वत्र संगठन करना।

(१६) गोरक्षाके लिये सभी लोग प्रतिदिन अपने-अपने इष्टदेव भगवान्से आर्त्त प्रार्थना करें।

शिव तथा शिवाका स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०)

भगवान् शिवकी ही शक्तिका नाम 'शिवा' है। शक्ति एवं शक्तिमान्में अभिन्न सम्बन्ध है। इन दोनोंमें किसी प्रकारका पार्थक्य नहीं है। शिवाके स्वरूप-विवेचनसे पूर्व 'शिव'के स्वरूपको जानना आवश्यक है। शीङ्-स्वप्ने सो जाना धातुसे उणादि प्रत्ययसे (या **'वश् कान्तौ शिवः स्मृतः'** पृषोदरा०) 'शिव' शब्द निष्पन्न होता है। अतः 'शिव'का अर्थ हुआ—जिसमें सब शयन करते हैं अथवा जिसके द्वारा धृत होकर सब कोई अवस्थान करते हैं या जो सबको वशमें रखनेवाला विश्वेश्वर है, वही सबका आधार है, जिनसे सब कुछ उत्पन्न होता है, स्थितिकालमें जिसके द्वारा धृत होता है तथा लयकालमें जिसमें सब कुछ लीन हो जाता है; वही 'शिव' हैं। परिवर्तनशील यह जगत् जिस स्थिर आधारपर शयन करता है, वे ही शिव हैं। उणादिवृत्तिकारका जो कहना है, वह शिवके निर्गुण या निर्विकार रूपका प्रतिपादन है—**'शेते तिष्ठति नन्दरतिभ्यां न विक्रियते'** अर्थात् **'गुणावस्थारहितः शान्तः शिवः शम्भुः॥** जिसमें सब कोई शयन करते हैं, वह शिव है'—इस कथनका तात्पर्य यही है कि वे सबके आधार हैं तथा परम कारण हैं। यह जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है, उन्हींपर स्थित रहता है तथा अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाता है। फलतः शिव ही इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति तथा लयके कारण हैं।

इतना ही नहीं, शिव ही निखिल विद्या और कलाकी मूल प्रसूति हैं। वे ही वेदरूपसे या शब्द-रूपसे समग्र विद्या तथा शिल्पकलाके आदि उपदेष्टा हैं। इसीलिये वाक्यपदीयके कर्त्ता महावैयाकरण श्रीभर्तृ-हरिका शब्दविद्याके विषयमें कथन है—

सा सर्वविद्या शिल्पानां कलानां चोपबन्धनी।
तद्वशादभिनिष्पत्तौ सर्वं वस्तु विभज्यते॥
(वा० प० ब्रह्मकाण्ड)

शिव (तथा शिवा भी, क्योंकि दोनोंमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं है) बुद्धिरूपसे—निश्चयात्मक ज्ञानरूपसे—सबके हृदयमें विद्यमान रहते हैं। सब प्राणी श्रद्धाके द्वारा ही किसी कार्यके करनेमें प्रवृत्त होते हैं। 'श्रद्धा' क्या है? निरुक्तके अनुसार वह निश्चयात्मिका बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता है। निरुक्तके वचन हैं—

श्रद्धा श्रद्धानात्। तस्या एषा भवन्ति निरुक्त ९।३०।

(श्रद्धा इत्येतत्पदम् अम-श्रत्-ति सत्यनाम पूर्व-पदम् तदस्यां क्रियत इति श्रद्धा श्रद्धानं तस्मात्) अर्थात्—धर्मार्थकाममोक्षेषु अविपर्ययेणैवमेतदिति या बुद्धिः सम्पद्यते, तदधिदेवता भावाख्या श्रद्धेत्युच्यते।
(नि० भा०)

तात्पर्य यह कि—'यह ऐसा ही है' 'इसके द्वारा यह कार्य अवश्य सिद्ध होगा' इस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता (भावना) को 'श्रद्धा' कहते हैं। शिवजी ही इस श्रद्धाके अधिदेवता हैं और वे ही श्रद्धारूपसे जीवको कर्म करनेमें प्रेरणा देते हैं। यदि चित्त मलरहित, निर्मल तथा सत्त्वगुणसम्पन्न रहता है, तभी मनुष्य शिवके आदेशको ठीक ढंगसे समझनेमें समर्थ होता है और उस आदेशका पालन करता हुआ वह कार्योंमें सफल होता है। फलतः किसी व्यवसायमें यदि व्यक्ति सफलमनोरथ होता है, तो वह शिवजीकी ही कृपाका फल होता है। वेद भी भगवान्की आदि आज्ञा रूप ही हैं। यदि भगवान् शंकर इस मूर्तिके द्वारा ज्ञान-विज्ञानका उपदेश न करते तो यह त्रिभुवन अन्ध और मूकके समान हो जाता, कोई भी ज्ञान-विज्ञान सीख नहीं सकता, कला तथा शिल्पका आविष्कार तथा उन्नति नहीं हो पाती—

साक्षात् भवान् यदि न विधाय मूर्तिमाद्यां
तत्त्वं निजं तद्वदिष्यदतोऽतिगुह्यम्।

नाज्ञास्यत त्रिभुवनं ध्रुवमन्धमूककल्पं
विश्वसमस्तमसमञ्जतामयस्यत् ॥
(आगमरहस्यस्तोत्र)

तथ्य यह है कि मनुष्य जो भी कर्म करता है, वह (कर्म) स्वतः अपना फल नहीं दे सकता। कोई जड़शक्ति उस फलको देनेवाली नहीं हो सकती। यह तो चेतन—शिवकी ही सामर्थ्य है कि वह उचित समय (परिपाककाल) आनेपर कर्मका फल प्रदान करता है। कर्मकी प्रवृत्ति और निवृत्ति अर्थात् कर्मको आरम्भ करना और कर्मको रोकना इन दोनोंपर जिनकी प्रभुता है, वे ही स्वतन्त्र हैं और उन्हींको 'कर्ता' कहा जाता है। पाणिनिका एतद्विषयक सूत्र ही है—**'स्वतन्त्रः कर्त्ता।'** शिवजी विश्वके कर्त्ता हैं, इसका यही तात्पर्य है कि विश्वसृष्टिके पूर्ण सूर्यकी कर्मके उत्पन्न होनेमें तथा विराम करनेमें प्रभुता अखण्डनीय है। फलतः वे परम स्वतन्त्र होनेके कारण 'कर्ता' कहे गये हैं। शिवजी जानते हैं कि किसका कैसा कर्म है, कब किसको फल देना होगा, कब किसके कर्मका विपाक काल आ पहुँचता है—इन सबोंकी जानकारी 'स्वतन्त्र'—ज्ञानसम्पन्न शिवमें ही विद्यमान है, अस्वतन्त्र कर्म अथवा बुद्धिहीन जड़शक्तिमें नहीं। मनुष्योंके कर्मको ईश्वर फल देकर अनुगृहीत करते हैं। यहाँ अनुग्रह की जो व्याख्या ऊपर की गयी है, वह 'न्यायवार्तिक'के ही वाक्योंका सारांश है—

'अपि तु पुरुषकर्म ईश्वरोऽनुगृह्णाति। कोऽनुग्रहार्थः? यद् यथाभूतं यस्य च यदा विपाककालः, तत् तथा तदा विनियुङ्क्ते इति' (न्यायवार्तिक)

शिवकी शक्तिका ही नाम 'शिवा' है। सांख्य—दर्शनमें निर्दिष्ट प्रकृति तथा शैवागमद्वारा व्याख्यात 'शक्ति' एक ही पदार्थ नहीं है। सांख्योंकी 'प्रकृति' त्रिगुणात्मिका होती है अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणोंका समुच्चय ही 'प्रकृति' को निष्पन्न करता है। वह स्वयं 'जड' है। यही प्रकृति या माया जगत् रूपी कार्यका उपादान कारण है। उसी प्रकार, जिस प्रकार स्वर्ण स्वर्णवलयका उपादान कारण और मृत्तिका घटका उपादान कारण है। प्रकृतिको अन्तरालमें (मध्यमें) रखकर ईश्वर-जगत्का उत्पादन करते हैं। फलतः जगत् रूपी कार्य प्रकृतिसे उत्पन्न होता है। ईश्वर विश्वकी सृष्टिमें उपादान कारण है तथा उत्पादनकर्ता भी है। ईश्वर प्रकृतिरूप शरीरद्वारा जगत्का उपादान कारण है तथा चैतन्यद्वारा इसका उत्पादन कर्ता है। यदि केवल जड प्रकृति ही जगत्का कारण होती, तो जगत् जडरूप होता। जीवोंमें 'मैं' 'मेरा' आदि रूप जो बुद्धिकी स्फूर्ति देखी जाती है, वह कथमपि नहीं होती। इसलिये जगत्की सृष्टिमें जडात्मिक प्रकृतिकी केवलमात्र कारणता नहीं है, प्रत्युत चेतन पुरुषके सान्निध्यमें तथा उसके द्वारा अधिष्ठित होकर ही प्रकृति जगत्के उत्पादनमें कारण होती है। विश्वसृष्टिके लिए प्रकृति और पुरुष दोनोंका अस्तित्व मानना पड़ेगा; क्योंकि आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। प्रकृति चैतन्यके लिये पुरुषकी अपेक्षा रखती है और जगत्के उपादान कारणके लिये प्रकृतिकी अपेक्षा होती है। प्रकृति तथा पुरुष आपसमें संयुक्त हैं, सदा ही सम्बद्ध हैं। परंतु इन दोनोंका यह सम्बन्ध आगन्तुक नहीं है—यष्टिधारी पुरुष तथा यष्टिके समान नहीं। दोनोंका सम्बन्ध अनादि है, दोनों ही 'अज' हैं—दोनोंका कभी जन्म नहीं होता। त्रिगुणात्मिका होनेसे वह तो रक्त (रज), शुक्ल (सत्त्व) तथा कृष्ण (तम) वर्णवाली श्रुतिमें कही गयी है। तैत्तिरीय आरण्यकका यह सारगर्भित कथन 'प्रकृति'के स्वरूपका स्पष्ट द्योतक है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
वह्वीं प्रजां सृजमानां सरूपाम्।
अजो ह्येको जुषमाणो नु शेते
जहात्येनां भुक्तभोगाम् अजोऽन्यः॥

(श्वेताश्व० महाभाष्य ८ । ४ नृसिंह पूर्वता० ५ । ५)

शिवकी शक्ति 'शिवा' प्रकृतिसे नितान्त भिन्न है। यह जड शक्ति नहीं है, प्रत्युत चैतन्य शक्ति है; चित्

*

शक्ति है। सूतसंहिता शिवका मार्मिक निरूपण करती हुई कह रही है—

सदाकारा परानन्दा संसारच्छेदकारिणी।
सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवंकरी॥

तात्पर्य है—शिवा सदाकारा है, परम आनन्दस्वरूपिणी है, संसारका लय करनेवाली है। वह परमानन्द उत्कृष्ट देवी है—चैतन्यमयी है और शिवंकरी है। सब प्राणियोंकी सुखकारिणी है। साथ-ही-साथ वह शिवसे अभिन्ना है। शिव तथा शिवाका यह सम्बन्ध नैसर्गिक है। एकके बिना दूसरेकी स्थिति अकल्पनीय है। बिना शक्तिके शिव एवं बिना शिवके शक्ति कभी हो नहीं सकती। ज्ञानी पुरुष वही है, जो उमा-महेश्वरके इस ऐक्याकार तात्त्विक स्वरूपका साक्षात्कार करता है। इस विषयमें सूतसंहिताका यह कथन यथार्थ ही है कि—

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
उमाशंकरयोरैक्यं यः पश्यति स पश्यति॥

अर्थात्—इस जगत्के भीतर जो भी वस्तु दृष्टिगोचर होती है, देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि—वह सब कुछ शिवशक्तिमय है।

त्रिपुरासुन्दरी—जगत्के भीतर जिस श्रेष्ठतम सौन्दर्यकी कल्पना की जा सकती है, उससे भी वह अत्यधिक सुन्दर है। इसीलिये दुर्गासप्तशतीका मार्मिक उद्गार है—**'सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी'** (१। ६५) कालिकापुराणमें भी इस अप्रतिम सौन्दर्यका निर्देश करते हुए 'ललिता' नामका निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

जगत्त्रयेऽपि यस्यास्तु सदृशी नैव सुन्दरी।
नामास्ति ललिता तेन देवी ललितकान्तिका॥

इस जगत्के भीतर दो प्रकारकी वस्तुओंकी सत्ता है—सत्, नित्य, आकाशादि तथा असत्, अनित्य, पृथिवी आदि। अथवा सत्—चेतनवर्ग तथा असत् अचेतनवर्ग। देवी इन दोनोंकी शक्तिरूपा हैं। इसीलिये वे अखिलात्मिका कही जाती हैं, अर्थात् वे निखिल विश्वरूपिणी हैं—

यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥
(दुर्गासप्तशती १। ६४)

इतना ही नहीं, शक्तिके दोनों ही रूप हैं। वे अतिसौम्य हैं, साथ-ही अतिरौद्र भी। आशय यह है कि जगत्के दोनों रूपोंका समन्वय भगवती दुर्गामें है। कहा नहीं जा सकता कि वे क्या नहीं हैं। जगत्में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है, वह उन्हींका स्वरूप है। विशुद्ध भावसे इस शक्तिकी उपासना करना ही जीवका परम कर्तव्य है। जब भगवान् अन्तर्लीन विमर्श होकर विराजमान रहते हैं, तब शक्तिमान्का प्राधान्य रहता है, परंतु उस अवस्थामें भी शक्तिकी अवस्थिति रहती है। अवश्य ही वह सूक्ष्मरूपमें रहती है। जब शिवकी विश्वसृष्टिकी रचनाके लिये इच्छा-शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, तब सुप्तशक्तिका उद्बोधन होता है और वह इस वैचित्र्य-सम्पन्न जगत्की रचनामें प्रवृत्त हो जाती हैं। ये शिवा ही सब कुछ हैं। ये ही माता हैं, ये ही दया हैं, ये ही व्याप्तिरूपिणी हैं। ये चिति-शक्ति हैं—जो समस्त जगत्को ज्ञानरूपसे व्याप्त कर अवस्थित रहती हैं—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्
(सप्तशती ५। ६४)

वे ही 'ईशा' हैं अर्थात् **'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्'** समर्थ हैं। ऐसी देवीकी शरणमें जानेसे ही जीवका कल्याण होता है। जीवको अपना अहंकार तथा अभिमान परित्यागकर इनकी शरणमें जाना चाहिये, तभी उसका वास्तविक कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

अन्तमें काशीकी अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णासे हमारा नम्र निवेदन है कि वे इनको भिक्षा प्रदानकर शरणागत-जीवका उद्धार करें—

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी।
काश्मीरा त्रिजनेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी॥
कामाकाङ्क्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी।
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥

गीताका कर्मयोग—१०

(श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायकी विस्तृत व्याख्या)

(लेखक—श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[सन् १९७८, अङ्क ११, पृष्ठ-संख्या ४५१ से आगे]

सम्बन्ध—कर्मोंको स्वरूपतः छोड़ देने मात्रसे उनका वास्तविक त्याग नहीं होता। अतः अनासक्त भावसे (मनसे कर्मफलमें लगाव न रखकर) प्राप्त कर्तव्य कर्मोंको करना ही श्रेष्ठ है—इस तथ्यका प्रतिपादन करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥
(गीता ३। ७)

भावार्थ—'हे अर्जुन! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करके आसक्तिरहित हो (समभावसे) समस्त इन्द्रियोंके द्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है; क्योंकि फलमें आसक्ति न रहनेसे कर्म करते हुए भी कर्मयोगीका कर्म (-फल)के साथ सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। फलस्वरूप उसे स्वतः समताकी प्राप्ति हो जाती है।' (विषमता तो फलमूलक होती है।)

'हे केशव! आप मुझे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं?' अर्जुनके इस प्रश्नपर श्रीभगवान्‌ने बताया है कि 'मनुष्य किसी भी अवस्थामें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। यदि वह बाहरसे कर्मोंको छोड़ देगा, तो भी उसके मनसे कर्म होते रहेंगे। जबतक उसका उद्देश्य संसारसे 'सम्बन्ध-विच्छेद' अथवा 'आत्मकल्याण' न होगा, तबतक कर्म करनेका वेग शान्त नहीं हो सकता; अपितु और भी बढ़ेगा। कर्मयोगीका उद्देश्य अपना 'कल्याण' है। अतएव वह अनासक्त-भावसे अर्थात् फलकी इच्छा रखकर कर्म करता है। इससे उसके कर्मका वेग शान्त हो जाता है और मनमें स्वाभाविक निवृत्ति आ जाती है तथा कर्मोंसे भलीभाँति सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। अतः वह (कर्मयोगी) सबसे श्रेष्ठ है।

अन्वयः—तु, अर्जुन, यः, मनसा, इन्द्रियाणि, नियम्य, असक्तः, कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, आरभते, सः विशिष्यते॥ ७॥

पद व्याख्या—

तु—किंतु।

यहाँ आसक्तिरहित कर्म करनेवालेको मिथ्याचारीकी अपेक्षा ही नहीं, बल्कि सांख्ययोगीकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ बतानेकी दृष्टिसे 'तु' पद दिया है। 'तु' पदसे अर्जुन-के प्रश्न—'मुझे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं?' उत्तर देनेके लिये भगवान् प्रकरण बदलते हैं। जो तत्त्व सांख्ययोगीको प्राप्त हो सकता है वही तत्त्व कर्म-योगीको सुगमतासे प्राप्त हो सकता है।

अर्जुन—हे अर्जुन! भगवान्‌ने 'अर्जुन' सम्बोधनका प्रयोग करके यह भाव दिखलाया है कि 'तुम निर्मल अन्तःकरणसे युक्त हो, अतः तुम्हारे अन्तःकरणमें कर्तव्यकर्मविषयक यह संदेह कैसे? अर्थात् ये भाव तुम्हारे स्थिर नहीं रह सकते। इसलिये भगवान्‌ने कहा कि तुम दैवी सम्पत्तिसे युक्त हो। (गीता १६। ५)

यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्य—जो व्यक्ति मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके।

यहाँ 'मनसा' पद सम्पूर्ण अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारका वाचक है और 'इन्द्रियाणि'-पद छठे श्लोकमें आये हुए 'कर्मेन्द्रियाणि' पदकी भाँति दसों इन्द्रियोंका वाचक है।

मनसे इन्द्रियोंको वशमें करनेका तात्पर्य है कि 'विवेकवती बुद्धिके द्वारा मन और इन्द्रियोंसे मेरी

आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है—ऐसा अनुभव करना। मनसे इन्द्रियोंका नियमन करनेपर इन्द्रियोंका अपना स्वतन्त्र आग्रह नहीं रहता अर्थात् हम उन्हें जहाँ लगाना चाहें वहीं वे लग जाती हैं एवं जहाँसे उन्हें हटाना चाहें, वहाँसे वे हट जाती हैं।

इन्द्रियाँ वशमें तभी होती हैं, जब इनके साथ ममता (मेरापन)का सर्वथा अभाव हो जाता है। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हो गयी हैं, उन पुरुषोंको भगवान्‌ने गीता (१२ । ११) में 'यतात्मवान्' कहा है। तात्पर्य यह है कि वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा ही कर्मयोगका आचरण होता है। भगवान्‌ने छठे श्लोकमें 'संयम्य' पदसे मिथ्याचारके विषयमें इन्द्रियोंको हठात् रोकनेका निर्देश किया; किंतु यहाँ 'नियम्य' पदसे शास्त्र-मर्यादाके अनुसार इन्द्रियोंका नियमन करने (इन्द्रियोंको निषिद्धसे हटाकर उन्हें साधनानुकूल बनाकर यथायोग्य कर्मयोगमें लगाने)का निर्देश किया है। नियमन करनेपर इन्द्रियोंका संयम स्वतः हो जाता है।

असक्तः—आसक्तिसे रहित होकर। (आसक्ति अर्थात् लगाव।)

आसक्ति दो जगह होती है—(१) कर्मोंमें और (२) उनके फलोंमें। समस्त दोष आसक्तिमें ही रहते हैं, कर्मों तथा उनके फलोंमें नहीं। आसक्ति रहते हुए योग सिद्ध नहीं हो सकता। आसक्ति-त्याग करनेपर ही योग सिद्ध होता है। अतएव कर्मोंका त्याग न करके उनमें आसक्तिका त्याग करना ही साधकके लिये उपेय है। यदि आसक्तिरहित होकर सावधानी एवं तत्परतापूर्वक कर्तव्य-कर्मका आचरण नहीं किया जाय तो कर्मोंसे कथमपि सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हो सकता। साधकके लिये आसक्तिरहित होना अचूक साधन है। ऐसी स्थिति तभी हो सकती है जब वह शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको 'मेरा' अथवा 'मेरे लिये' न मानकर तत्परतापूर्वक बड़े उत्साहके साथ विधिवत् कर्तव्य कर्मका आचरण करनेमें लग जाय। ये शरीर आदि सभी संसारके हैं, अतः इन्हें संसारकी सेवामें ही लगा देना है। दूसरोंके लिये किये जानेवाले कर्मवेग शान्त हो जाते हैं और अपने लिये कर्म करनेसे कर्मवेग एवं अशान्ति बढ़ती है। जब मनुष्य अपने लिये कर्म न करके केवल दूसरोंके हितार्थ करता है, तब उसकी अपनी फलासक्ति स्वतः मिट जाती है।

कर्मेन्द्रियोंसे होनेवाली साधारण क्रियाओंसे लेकर चिन्तन तथा समाधितककी समस्त क्रियाओंका हमारे स्वरूपके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है (गीता ५। ११, १८ । १७)। स्वरूपसे अनासक्त होते हुए भी यह जीवात्मा स्वयं आसक्ति बनाकर संसारसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है।

कर्मयोगीकी वास्तविक महिमा आसक्ति-रहित होनेमें है और क्रियमाण तथा प्रारब्ध कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले चार प्रकारके फलोंको* न चाहना अर्थात् उनसे सर्वथा असङ्ग रहना है।

* (क) प्रारब्ध कर्म—

(१) प्राप्तकर्मफलके अनुसार प्राप्त होनेवाले शरीर धन सम्पत्ति, जाति, वर्ण और अधिकार आदि ये सभी प्राप्त शुभ-अशुभ कर्मफलके अन्तर्गत हैं।

(२) अप्राप्तकर्मफल—जो परिस्थितियाँ भविष्यमें प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होनेवाली हैं वे सभी अप्राप्त कर्मफलके अन्तर्गत हैं।

(ख) क्रियमाण कर्म—

(१) दृष्ट-कर्मफल—वर्तमानमें किये जानेवाले कर्मोंका फल अर्थात् जिस कर्मको करनेके पश्चात् उसका फल प्रत्यक्ष दीखता है, उसे दृष्ट-कर्मफल कहते हैं। जैसे भोजन किया और तृप्ति हो गयी, सो गये और आराम मिल गया व्यवहारका काम किया और चाहे वैसे पूर्ण हो गया।

(२) अदृष्ट-कर्मफल—वर्तमान जीवनमें किये जानेवाले नये शुभ-अशुभ कर्मोंका जो कालान्तरमें इस लोक और परलोकमें प्राप्त होगा तथा जिसके भोगका विधान अभी नहीं बना है, वह अदृष्ट-कर्मफल कहलाता है।

कर्मफलके त्यागकी बात सुनकर प्रायः ऐसा समझा जाता है कि अदृष्ट कर्मफलका त्याग ही करना चाहिये; परंतु थोड़ा विचार किया जाय तो मालूम पड़ता है कि मनुष्य अधिकतर दृष्ट-कर्मफलसे ही फँसते हैं। लोग झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी, ठगी आदि निषिद्ध कर्म भविष्यमें मिलनेवाले (अदृष्ट) कर्मफलके भयसे ही नहीं करते, अपितु वर्तमानमें मिलनेवाले (दृष्ट) कर्मफलके भयसे भी करते हैं। अतः दृष्ट कर्मफलकी आसक्तिका त्याग करनेसे स्वतः ही निषिद्ध कर्म (पाप) नहीं होंगे। दृष्ट-कर्मफलका त्याग सभी साधकोंके लिये आवश्यक है। बिना इस त्यागके भक्तियोग तथा ज्ञानयोग आदि कोई योग भी सिद्ध नहीं हो सकता। जब ज्ञानयोगी और कर्मयोगी दोनों ही फलेच्छा और आसक्तिका त्याग करते हैं, तब ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोग अधिकतर सुगम सिद्ध होता है, क्योंकि कर्मयोगीको फिर किसी अन्य साधनकी आवश्यकता नहीं रहती, जबकि ज्ञानयोगीको देहाभिमान मिटानेके लिये अन्य साधनों (ध्यान, धारणा एवं समाधि आदि) की भी आवश्यकता रहती है। कर्मयोगमें आसक्तिका त्याग मुख्य है, जिससे कर्मयोगीको समबुद्धिकी प्राप्ति हो जाती है। अतः भगवान्‌की स्पष्ट वाणी है कि 'कर्मोंके त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं, अपितु आसक्तिरहित कर्म करना इस योगकी सिद्धिका सर्वोत्तम साधन है।'

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम् आरभते—कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका आरम्भ करता है।

जो कर्म अपने लिये न करके दूसरोंके हितके लिये किया जाता है वह कर्मयोग कहलाता है। अभिप्राय यह है कि देश, काल और परिस्थिति आदिके अनुसार शास्त्र-विहित और अपने स्वार्थका त्यागपूर्वक प्राप्त कर्तव्य कर्म करना 'कर्मयोग'का आरम्भ है।

जैसे इसी श्लोकके प्रथम चरणमें **'इन्द्रियाणि'** पदका तात्पर्य दसों इन्द्रियोंसे है वैसे ही यहाँ **'कर्मेन्द्रियैः'** पदको दसों इन्द्रियोंका ही वाचक समझना चाहिये। यदि **'कर्मेन्द्रियैः'** पदसे हाथ, पैर एवं वाणी आदिको ही लिया जाय, तो बिना देखे-सुने तथा बिना मनसे विचार किये कर्म कैसे होंगे ? अतएव यहाँ सभी कारणों अर्थात् अन्तःकरण और बहिष्करणको भी कर्मेन्द्रियाँ माना गया है।

गीता २। ३९ में **'योगे त्विमां शृणु'** और **'योगः कर्मसु'** (२। ५०) आदि स्थानोंपर जो योगपद आया है उसे अर्जुनने बुद्धियोग समझा, परंतु तीसरे अध्यायके प्रारम्भमें ही भगवान्‌ने (गीता ३। ३) कर्मके साथ योगपद देकर अर्जुनके इस संदेहको दूर किया है कि कर्म और योग भिन्न-भिन्न हैं। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेका नाम 'योग' है। संसारका सम्बन्ध राग-द्वेषसे होता है। कर्मयोगी प्रत्येक कार्य राग-द्वेषसे रहित होकर अर्थात् समतामें स्थित होकर करता है।

स विशिष्यते—वह श्रेष्ठ है।

अर्जुन कर्मकी अपेक्षा समताको श्रेष्ठ मानते हैं (गीता ३। १), किंतु यहाँ भगवान् समताकी अपेक्षा कर्मको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। कारण यह है कि समता साध्य है और साधनसे ही साध्यकी सिद्धि होती है, अतः साधन ही श्रेष्ठ है।

समताको श्रेष्ठ मानते हुए भी अर्जुन युद्धकर्मसे बचना चाहते हैं। जब कर्म करनेका अवसर आता है, तब साधक वैराग्यकी आड़में अकर्मण्यताका आश्रय लेने लगता है। अतएव भगवान् कहते हैं कि केवल स्वरूपसे कर्मोंके त्यागसे किसी योगकी सिद्धि नहीं होती। अतः कर्म न करनेकी अपेक्षा आसक्तिरहित होकर कर्म करना ही श्रेष्ठ है। इससे आलस्य और प्रमाद साधकमें नहीं आ सकते। अतः कर्मयोगसे

सांख्ययोग स्वतः सिद्ध हो जायगा । कर्तृत्वके त्यागमें तेजीका वैराग्य और बुद्धिकी सूक्ष्मताकी अत्यावश्यकता है । परंतु कर्मयोगमें दूसरोंकी सेवाके लिये त्याग करना (अर्थात् भोक्तृत्वका त्याग) सुगम हो जाता है । प्रारम्भका 'तु' पद भी इसी बातका द्योतक है ।

विशेष बातें—कर्मोंका त्याग करना चाहिये या नहीं ?—यह देखना वस्तुतः गीताका सिद्धान्त ही नहीं है; क्योंकि गीताके अनुसार कर्मोंमें आसक्ति ही (दोष होनेके कारण) त्याज्य है । 'योग' अपने लिये होता है और 'कर्म' संसारके लिये; क्योंकि संसारके प्राकृत साधनोंसे हमारा कल्याण नहीं हो सकता । कर्मके द्वारा सांसारिक वस्तुएँ ही प्राप्त हो सकती हैं । परमात्माको प्राप्त करनेमें ये वस्तुएँ कभी भी सहायक नहीं हो सकतीं ।

कर्तृत्व-भोक्तृत्वका नाम ही संसार है । कर्तृत्वको मिटानेके लिये 'ज्ञानयोग' और भोक्तृत्वको मिटानेके लिये 'कर्मयोग' है । एक अर्थात् कर्तृत्वके मिटनेपर दूसरा भोक्तृत्व स्वतः मिट जाता है । वस्तुतः भोक्तृत्वपर ही कर्तृत्व टिका हुआ है । अतः यदि भोक्तृत्वको पहले नष्ट कर दिया जाय, तो कर्तृत्व स्वतः मिट जाता है ।

अर्जुन कर्तव्यको 'अपने लिये' मानते हैं । इसलिये उन्हें युद्धरूप कर्तव्य-कर्म 'घोर' दीख रहा है । इसपर भगवान् यह स्पष्ट करते हैं कि आसक्ति ही 'घोर' होती है, कर्म नहीं ॥ ७ ॥ (क्रमशः)

'असक्तः स विशिष्यते'

जिस मनुष्यका मन तो शुद्ध नहीं है, पर केवल दूसरोंके भयसे या इस अभिलाषासे कि दूसरे मुझे भला कहें, केवल बाह्येन्द्रियोंके व्यापारको रोकता है, वह सच्चा सदाचारी नहीं है, वह ढोंगी है । जो लोग इस वचनका प्रमाण देकर कि 'कलौ कर्ता च लिप्यते'—कलियुगमें दोष बुद्धिमें नहीं, किंतु कर्ममें रहता है—यह प्रतिपादन किया करते हैं कि बुद्धि चाहे जैसी हो, परंतु कर्म बुरा न हो; उन्हें इस श्लोकमें वर्णित गीताके तत्त्वपर विशेष ध्यान देना चाहिये । उक्त सातवें श्लोकसे यह बात प्रकट होती है कि निष्काम बुद्धिसे कर्म करनेके योगको ही गीतामें 'कर्मयोग' कहा है ।

× × ×

पाँचवें अध्यायके आरम्भमें और अन्यत्र भी यह स्पष्ट कह दिया गया है कि संन्यासमार्गसे कर्मयोग अधिक योग्य या श्रेष्ठ है; क्योंकि, कभी क्यों न हो, "कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः" अकर्मकी अपेक्षा कर्म श्रेष्ठ है (गी० ३ । ८), "इसलिये तू कर्म ही कर" (गी० ४ । १५) अथवा "योगमातिष्ठोत्तिष्ठ" (गी० ४ । ४२)-कर्मयोगको अङ्गीकार कर युद्धके लिये खड़ा हो, "(योगी) ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः"—ज्ञानमार्गवाले (कर्म-संन्यासी) की अपेक्षा कर्मयोगीकी योग्यता अधिक है, "तस्माद्योगी भवार्जुन" (गी० ६ । ४६)—इसलिये हे अर्जुन ! तू (कर्म-) योगी हो, अथवा "मामनुस्मर युध्य च" (गी० ८ । ७)—मनमें मेरा स्मरण रखकर युद्ध कर इत्यादि अनेक वचनोंसे गीतामें अर्जुनको जो उपदेश स्थान-स्थानपर दिया गया है, उसमें भी संन्यास या अकर्मकी अपेक्षा कर्मयोगकी अधिक योग्यता दिखलानेके लिये, 'ज्यायः', 'अधिकः' और 'विशिष्यते-'इत्यादि पद स्पष्ट हैं । अठारहवें अध्यायके उपसंहारमें भी भगवान्‌ने फिर कहा है कि "नियत कर्मोंका संन्यास (त्याग) करना उचित नहीं है, आसक्ति-विरहित सब काम सदा करने चाहिये, यही मेरा निश्चित और उत्तम मत है" (गी० १८ । ६-७) । इससे निर्विवाद सिद्ध होता है कि गीतामें संन्यास-मार्गकी अपेक्षा कर्मयोगको ही श्रेष्ठता दी गयी है । —लोकमान्य तिलक

सूरदास और भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-तिथि

(लेखक—डॉ० श्री एम्० संगमेशम्, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

श्रीकृष्णकी ऐतिहासिकताको लेकर अबतक अनेक विचारात्मक सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। इसी तरह महाभारतका युद्ध, श्रीकृष्णका निर्वाण, कलिका आरम्भ जैसी बातोंको लेकर भी कई शोधपरक, विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुए और अब भी हो रहे हैं। कई विद्वान् श्रीकृष्णको ईसा-पूर्व चौदहवीं सदीमें वर्तमान माननेके पक्षमें हैं। इस विषयमें वे लोग महाभारतको प्रधान साक्ष्याधार मानकर प्रमाण संग्रह करते हैं और वहाँ जो वचोविघात-जैसी बातें उनको मिलती हैं, उनके आधारपर जो कोई निर्णय वे करते हैं उसपर वे स्वयं विश्वास नहीं करते। कुछ अन्य विद्वान् जो पुरातत्त्व आदि अन्य आधारोंपर श्रीकृष्णकी जन्म-तिथिका निर्णय करना चाहते हैं, वे कभी ऐसे संदेहमें भी पड़ते हैं कि आखिर भारत-युद्ध जैसी बात कभी घटी या नहीं! ऐसी स्थितिमें महाकवि सूरदासके निम्नलिखित पदकी ओर उन समीकी दृष्टि आकृष्ट की जाती है जो इस विषयमें कुछ जिज्ञासा रखते हैं। सूरदासका यह पद (सूरसागर, ना० प्र० सभा, संस्करण १०८६) उनके समयमें प्रचलित आप्तवाक्य जैसे परम्परागत तथ्योंके आधारपर श्रीकृष्णकी जन्म-तिथिका ही नहीं, बल्कि उनकी सारी कुण्डलीका फलितांशसहित विवरण दे रहा है। वह पद यों है—

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घरकौ,
　　पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै,
　　चाहत तुमहिं सुनायौ॥
संवत सरस बिभावन, भादौं,
　　आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध-
　　निसि हर्षन जोग उदार॥
बृष है लग्न, उच्चके निसिपति,
　　तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथे सिंह रासिके दिनकर,
　　जीति सकल महि लैहैं॥
पचवैं बुध कन्या कौ जौ है,
　　पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठवें सुक्र तुलाके सनि जुत,
　　सत्रु रहन नहिं पैहैं॥
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं,
　　सतवें राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत,
　　बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं॥
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति,
　　नवनिधि घर मैं ऐहैं।
कर्म-भवन के ईस सनीचर,
　　स्याम बरन तन ह्वैहैं॥
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु,
　　घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हहैं अवतरे आनि कै,
　　सूरदास के स्वामी॥*

* श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तृतीय अध्यायकी 'अन्वयार्थ-प्रकाशिका' टीकामें 'ख-माणिक्य' नामक ज्योतिष ग्रन्थके आधारपर भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मपत्रीके विषयमें निम्नाङ्कित श्लोक उद्धृत किया गया है—

उच्चस्थाः शशिभौमचान्द्रिशनयो लग्नं वृषो लाभगो जीवः सिंहतुलालिषु क्रमवशात्पूषोशनोराहवः।
नैशीथः समयोऽष्टमी बुधदिनं ब्रह्मर्क्षमत्र क्षणे श्रीकृष्णाभिधमम्बुजेक्षणमभूदाविः परं ब्रह्म तत्॥

इसीसे मिलता-जुलता सूरदासका एक पद 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता'से उद्धृत किया जाता है, जो इस प्रकार है—

यह तो स्पष्ट है कि सूरदासने इस पदमें श्रीकृष्ण-जन्म सम्बन्धी जितने विवरण दिये हैं, उतने अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। भागवतपुराण (१० । ३ । १से ४) में 'अजनजन्मर्क्षे' कहकर (अजन—प्रजापति) ब्रह्म

नन्दजू मेरे मन आनन्द भयो, मैं सुनि मथुराते आयो, लगन सोधि ज्योतिषको गिनि करि, चाहत तुम्हहि सुनायो ।
संबत्सर 'ईश्वर'को भादों, नाम जु कृष्ण धरयो है, रोहिणि, बुध, आठै अँधियारी, 'हर्षन-'जोग परयो है ॥
वृष है लग्न, उच्चके 'उडुपति', तनको अति सुखकारी, दल चतुरंग चलै सँग इनके, ह्वै हैं रसिकबिहारी ।
चौथी रासि सिंहके दिनमनि, महिमण्डलको जीतै, करिहैं नास कंस मातुलको, निहचै कछु दिन बीतै ॥
पञ्चम बुध कन्याके सोभित, पुत्र बढ़ैंगे सोई, छठऐं सुक्र तुलाके सनिजुत, सत्रु बचै नहिं कोई ।
नीच-ऊँच जुवती बहु भोगैं, सप्तम राहु परयो हैं, केतु 'मुरति' में स्याम बसन, चोरीमें चित्त धरयो हैं ॥
भाग्य-भवनमें मकर महीसुत, अति ऐश्वर्य बढ़ैगो, द्विज, गुरुजनको भक्त होइकै, कामिनि-चित्त हरैगो ।
नव-निधि जाके नाभि बसत हैं, मीन बृहस्पति केरी, पृथ्वी-भार उतारैं निहचै, यह मानो तुम मेरी ॥
तब ही नन्द-महर आनन्दे, गर्ग-पूजि पहरायो, असन, बसन, गज बाजि, धेनु, धन, भूरि भँडार लुटायो ।
बंदीजन द्वारै जस गावैं जो जाँच्यो सो पायो, ब्रजमें कृष्ण-जन्म उत्सव, 'सूर' बिमल जस गायो ॥

इसके अनुसार यह जन्मकुण्डली भी प्रस्तुत होती है—

३ १
४ चं० २ के० १२ बृ०
सू० ५ ११
६ बु० ८ रा० १० मं०
शु० ७ श० ९
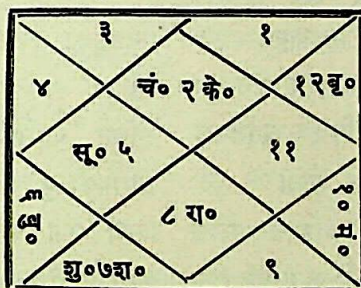
एक और श्लोक उक्त टीकामें कहींका उद्धृत है। विचारार्थ उसे भी हम यहाँ दे रहे हैं।

बृषकन्यातुलामीनराशिषु स्फुटमुच्चगाः ।
सोमसौम्यशनिक्षोणीसुतास्तज्जन्मनि स्थिताः ॥
यस्माद्विश्वावसौ वर्षे जन्म श्रीनन्दजन्मनः ।
विश्वमेव वसु श्रीमद् बभूवामुष्य तुष्यतः ॥

इतिहास और ज्योतिषके कर्णाटकके एक विद्वान् श्री बी० एच० वडेर एम्० ए० महोदयकी प्रेषित श्रीकृष्णकी एक जन्मकुण्डली भी कल्याणके छठे वर्षके श्रीकृष्णाङ्कमें प्रकाशित है। हम उसे भी पाठकोंके सुभीतेके लिये यहाँ दे रहे हैं—
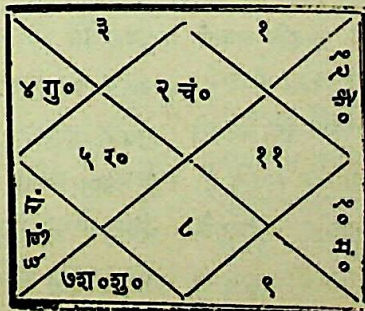
(विशेष-द्रष्टव्य-'कल्याण'के छठे वर्षके विशेषाङ्क-श्रीकृष्णाङ्कमें स्व० पं० लज्जारामजी मेहताका लेख पृष्ठ-सं०–४७८)

देवताके रोहिणीको जन्म-नक्षत्र करके सूचित किया गया है। विष्णुपुराण (५ । ३ । ७) में अर्द्धरात्रिकी बात कही गयी है। हरिवंश (विष्णुपर्व० ४ । १६) में **'जयन्तानाम शर्वरी'** कहकर अष्टमी युक्त रोहिणीका संकेत दिया गया है। किंतु हरिवंशके दाक्षिणात्य संस्करणमें बताया गया है कि—

अष्टम्यां श्रावणे मासे कृष्णपक्षे महातिथौ।
रोहिण्यामर्द्धरात्रे च सुधांशोरुदयोन्मुखे॥
(हरिवंश,पूर्वभाग, ५२)

अर्थात् श्रीकृष्णका जन्म श्रावण मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको आधी रातके समय रोहिणी नक्षत्रमें चन्द्रोदयके साथ हुआ था। हरिवंशके तेलुगु अनुवादमें कवि एरप्रिगडाने उपर्युक्त सभी बातोंको यथामूल लिखकर यह भी जोड़ दिया है कि उस समय पाँच ग्रह उच्चमें थे। (**ग्रहमुल्ल स्वोच्चगृहंबुलंदयिदुविभ्राजिलल** ह० पू० ५-११६) इससे यही ज्ञात होता है कि सूरके समयमें ही नहीं, उनके पूर्व दो सौ साल पहलेके कवि एरप्रिगडाके समयमें भी कृष्णकी जन्मकुण्डलीके बारेमें पण्डितमण्डलीमें कुछ परम्परा-विश्रुत तथ्य प्रचलित थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि सूरदासजीने जो कुण्डली दी है, वह परम्परासे कहाँतक मेल खाती है और गणितके आधारपर वह कहाँतक सही सिद्ध होती है? इससे पूर्व यह भी देखना उचित होगा कि **'आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट घट अंतरयामी। सो तुम्हहैं अवतरै आनिकै, सूरदासके स्वामी॥'** करके जो कहा गया है, उसके अनुरूप लक्षण उक्त कुण्डलीमें क्या-क्या मिलते हैं। ज्योतिषीलोग इन बातोंका परीक्षण कर सकते हैं, किंतु हम साहित्यिकोंके सामने तुलनात्मक परीक्षाके लिये ऐसे एक अन्य अवतार-पुरुष श्रीरामकी कुण्डली प्रस्तुत है, जिसे भगवान् वाल्मीकिने अपनी रामायणमें दी है। वह यों हैं—

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याऽजनयद् रामं सर्वलक्षणसंयुतम्॥
विष्णोरर्द्धं महाभागं पुत्रमिक्ष्वाकुनन्दनम्।
(वा० रा०, बालकाण्ड, सर्ग १८ । ८-११)

अर्थात् द्वादश (मीन) क्षेत्रमें शुक्लपक्ष नवमीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें पाँच ग्रहोंके उच्चमें रहते समय, कर्कट लग्नमें, चन्द्र और बृहस्पतिके लग्नमें रहते समय कौसल्याने विष्णुके अर्द्धांश सम्भूत, सर्वलक्षणसमुपेत, सर्वलोकनमस्कृत, जगन्नाथ श्रीरामको जन्म दिया था। अब स्पष्ट है कि यहाँ **'नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये'** कहकर पुनर्वसुका संकेत जो दिया गया है, वह श्रीकृष्णके जन्म नक्षत्रके सम्बन्धमें **'अजनजन्मर्क्षे'** कहकर रोहिणीको सूचित करनेकी पद्धतिसे साम्य रखता है, फिर श्रीरामकी कुण्डलीमें पाँच ग्रहोंकी उच्चस्थितिका जो संकेत किया गया है, वह भी तेलुगु हरिवंशमें श्रीकृष्णकी कुंडलीमें पाँच ग्रहोंके उच्चमें होनेकी बात जो कही गयी है उससे साम्य रखता है। भगवान् रामकी कुण्डलीमें पाँच ग्रह तो उच्चमें स्थित बताये गये हैं, किंतु पण्डितोंका मत है कि चार ग्रह ही उच्चमें हैं, पाँचवां रविको उच्चापेक्षी ही मानना चाहिये। क्योंकि रवि मेषमें उच्चस्थ हों तो पुनर्वसु और नवमीका युगपत् सम्प्राप्त होना आजके ग्रह-गणितके अनुसार असम्भव है। अब श्रीकृष्णकी सूरदासीय कुण्डलीमें भी चार ग्रह (चन्द्र, कुज, बुध और शनि) उच्चमें मिलते हैं और पाँचवाँ बृहस्पति मीनमें स्वगृही होकर अपने उच्च स्थान कर्कटको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा है, अतः उसे उच्चापेक्षी मान सकते हैं। क्योंकि ज्योतिषी लोगोंका कहना है कि स्थितिका जो फल या महत्त्व है वही दृष्टिका भी है। इस तरह चार ग्रहोंकी उच्चस्थिति तथा एकके उच्चापेक्षी होनेकी बातमें श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनोंकी कुण्डलियाँ समानरूपसे मिलती हैं।

बृहस्पतिको आङ्गिरस भी कहते हैं। वेदोंमें आङ्गिरस-कृष्णकी प्रशंसा मिलती है। ऋग्वेद ८। ८५। ३ तथा ८६ व ८७ मंत्र-सूक्तोंको आङ्गिरस श्रीकृष्णसे सम्बद्ध बताया जाता है (दे० अनुक्रमणिका)। छान्दोग्य उपनिषद् (३। १७। ६) में देवकीपुत्र श्रीकृष्णको घोर आङ्गिरसका शिष्य बताया गया है। इन सब बातोंसे श्रीकृष्णका आङ्गिरससे गोत्रसम्बन्ध स्पष्ट होता है। अब देखिये कि सूर्यवंशी श्रीरामकी कुण्डलीमें सूर्यको उच्चापेक्षी दिखाया गया है तो आङ्गिरस-सम्बन्धी श्रीकृष्णकी कुण्डलीमें आङ्गिरस बृहस्पतिको उच्चापेक्षी दिखाया गया है। यह भी इन दोनों अवतारपुरुषोंकी कुण्डलियोंमें प्रकट साम्य है।

भागवतपुराण (११। ७। २) में कहा गया है कि श्रीकृष्णका निर्वाण और कलिका आरम्भ एक ही दिन हुआ। फिर उसी पुराण (११। ६। २५) में यह भी कहा गया है कि श्रीकृष्ण इस पृथ्वीपर १२५ वर्ष पर्यंत रहे। प्रतिवर्ष पञ्चाङ्गोंमें कलिगत वर्ष सूचित किया जाता है। वर्तमान वर्ष (सं०२०३६)में कलिगताब्दकी संख्या ५०८० है। इसमें १२५ वर्ष जोड़कर, पीछेकी ओर ईसवीमें गिनें तो श्रीकृष्णका जन्मवर्ष ईसापूर्व ३२२७वाँ साल सिद्ध होता है और षष्टिवर्ष वर्षचक्रमें वह 'भाव' संवत्सर पड़ता है, जिसे सूरदासने 'संवत सरस विभावन' कहा है। (अग्रवाल प्रेसके 'सूर-निर्णय' नामक ग्रन्थ, पृष्ठ १४८९ में 'संवत ईश्वर' करके जो पाठ छपा है, वह गिनतीमें ठीक नहीं उतरता, अतः अपपाठ मालूम पड़ता है।)

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि सूरदासजीने श्रीकृष्णजन्म-सम्बन्धी जो बातें लिखी हैं, वे सब परम्परासिद्ध और सर्वांशतः सही हैं। अतः महाभारतका युद्ध, श्रीकृष्णका समय, कालका आरम्भ-जैसी बातोंका निर्णय करते समय इतिहासवेत्ता और शोधकर्ता विद्वान् लोग सूरके इस पदको भी प्रमाण-संग्रहमें स्थान दें और प्रमाण-परीक्षाके रूपमें अपने निश्चित वर्ष या निर्णीत तिथिका इन सभी-वर्ष-तिथि-वार-नक्षत्र आदि विवरणोंसे कितना समन्वय हो रहा है यह भी देख लें। ऐसा करें तो अपने समयके सम्प्रदायको ग्रन्थस्थ करनेमें सूरने जो कष्ट उठाया है, उसके प्रति कुछ न्याय होगा।

श्रीकृष्ण-कुण्डलीका आधारभूत एक प्राचीन पद

स्वस्ति श्रीमन्नृपतिवर चक्रवर्ति महाराज।
पाण्डुराजके राज्यमें युग द्वापर सुख साज॥
आठ लाख तिरसठ सहस वसु सत अरु सैंतीस।
युग-द्वापर बीते बरस पाण्डुराज अवनीस॥
छयालिस दंड पलान बीस नख कृत्तिका माँहि।
चौबीस तेईस जानिये रोहिणी परसत माँहि॥
हर्षण योग सहर्षियों कौलव करण समर्थ।
सूर दक्षिण दिन रह्यो इकतीस बारह अर्थ॥
रातमान अठाईस अरु अड़तालीस पल जान।
सिंह सूर लखु बीस अरु भोग याहि परमान॥
चौवालीस अड़तालीस पर सूर्योदयको इष्ट।
अर्द्धनिशा शशि उगतहि प्रगटे जगके इष्ट॥

इसके अनुसार यह पत्रिका प्रस्तुत होती है, जो श्रीमद्वल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गमें समादृत है—

स्वस्ति श्रीमन्नृपतिपाण्डुराज्ये द्वापरशेषवर्षे १६३ ईश्वरनामसंवत्सरे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे अष्टम्यां तिथौ बुधवासरे घ० ४६ प० २० कृत्तिकाभे घ० २४ प० २३ तदुपरि रोहिणीनक्षत्रे हर्षणयोगे कौलवकरणे एवं पञ्चाङ्गे श्रीसूर्योदयादिष्टम् घ० ४४ प०४८ तत्समये वृषोदये श्रीनन्दनन्दनावतारोऽभवत्। सूर्यः ४। २०, दिनमान घ० ३१ प० १२, रात्रिमान घ २८ प ४८।

(सुलभ-ज्योतिष-ज्ञान ३१ में उद्धृत)

संध्योपासना और सूर्य

(लेखक—पं० श्रीकृष्णकान्तजी मिश्र 'ज्यो० वि०')

'संध्योपासना' के दो अर्थ हो सकते हैं—संधिकालकी उपासना तथा सूर्यमण्डलगत ब्रह्मकी उपासना।

अहोरात्रस्य या संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जिता।
सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(दक्षस्मृति)

अर्थात्—दिन और रातकी संधि-वेला जो सूर्य और तारोंसे रहित हो, उसे तत्त्वदर्शी मुनियोंने संध्याकी संज्ञा दी है। इसीको उद्देश्यकर कहा गया है—

संधौ संध्यामुपासीत नोदिते नास्तगे रवौ॥

(याज्ञवल्क्य)

अर्थात्—सूर्योदय और सूर्यास्तसे कुछ पहले तथा मध्याह्न-कालकी संधि-वेलामें संध्या-उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार संध्योपासनाका अर्थ सूर्यके उदयास्तादिसे निष्पन्न अहोरात्रकी संधि-वेलामें की जानेवाली उपासना है।

'संध्येति सूर्यगं ब्रह्म' (व्यासस्मृति)

अर्थात्—सूर्यमण्डलगत ब्रह्मको संध्या कहते हैं। इसके आधारपर सूर्यमण्डलगत ब्रह्मकी उपासनाको संध्योपासना कहते हैं। यह दूसरा अर्थ है।

शास्त्रोंमें त्रिकाल संध्याका विधान है। १—प्रातः-संध्या, २—मध्याह्न-संध्या और ३—सायं-संध्या।

एतत्संध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्॥

(छान्दोगपरिशिष्ट)

प्रातः जब तारे दीखते हों तबसे प्रातः-संध्या प्रारम्भ कर सूर्योदय होनेपर समाप्त करनी चाहिये।

पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत् तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥

(देवीभागवत)

मध्याह्न-संध्या सूर्यके सामने ही होती है। निबन्धों तथा शास्त्रोंने सायं-संध्याका समय सूर्यके रहते ही निर्धारित किया है।

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमाऽस्तमिते रवौ।
अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा स्मृता॥

(देवी भागवत ११)

अर्थात्—सूर्यके सामने की जानेवाली उपासना उत्तम मानी गयी है। श्रुति भी सूर्यके रहते ही संध्या करनेका आदेश देती है।

अहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपासते सज्योतिषि आज्योतिषो दर्शनात्॥

अर्थात्—दिन और रातकी संयोग-वेलामें संध्या करे, सायंकालीन संध्या सूर्यके रहते और प्रातःकालीन संध्या सूर्योदयके पहले आरम्भ कर सूर्योदयके बाद-तक करे। तीनों प्रकारकी संध्या उदित सूर्यमें ही सम्पादित होती है।

श्रुति प्रतिदिन संध्या करनेका आदेश देती है।

अहरहः संध्यामुपासीत।

अर्थात्—प्रतिदिन संध्या करे। स्मृतिवाक्य है—

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा।

अर्थात्—आत्मविद् द्विजोंको सदा तीनों कालकी संध्या करनी चाहिये। संध्या नहीं करनेसे कर्त्तव्य कर्मोंकी अर्हा समाप्त हो जाती है—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥

(दक्षस्मृति)

अर्थात्—जो संध्या नहीं करते उनके किसी भी कर्ममें अधिकार नहीं रह जाते हैं। यदि कुछ दूसरा कर्म करते भी हैं तो उनके फल उन्हें नहीं मिलते हैं।

यः संध्याकालतः प्राप्तामालस्यादतिवर्तते।
सूर्यहत्यामवाप्नोति ह्युलूकत्वमियात् स च॥

(अत्रिस्मृति)

अर्थात्—जो सन्ध्याकालमें आलस्यके कारण सन्ध्या-कर्म नहीं करता, उसे सूर्य-हत्याका पाप लगता है और बादमें वह उल्लूकी योनिको प्राप्त करता है।

निर्धारित समयपर सन्ध्या नहीं करनेसे कालातिक्रमण-प्रायश्चित्त करना पड़ता है। कालातिक्रमण होनेपर 'ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' अन्तमें जोड़कर सप्रणव-व्याहृति गायत्रीमन्त्रसे सूर्यको चौथा अर्घ्य देना चाहिये।

गायत्रीं शिरसा सार्धमुक्त्वा व्याहृतिभिः सह।
कालातीतं विशुद्ध्यर्थं चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत्॥
(मदनपारिजात)

सूर्य-परक होनेके कारण ही संध्या नहीं करनेसे सूर्य-हत्याका पाप लगता है और उसके निवारणके लिये ही चौथा अर्घ्य सूर्यको दिया जाता है।

कुछ कारणोंको छोड़कर मरणाशौच और जननाशौच सामान्यतः दस दिनोंका होता है। विशेष यह है—

आसप्तजन्मनः सद्य आचूडा नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतदेशाद्दशरात्रमतः परम्॥
(याज्ञवल्क्य)

अर्थात्—सात मासतकके बच्चेके मरनेपर सद्यः अशौच, सात माससे ऊपर दो वर्षतककी मृत्युमें एक दिन, दो वर्षसे ऊपर छः वर्षतककी मृत्युमें तीन दिन और छः वर्षसे ऊपर मृत्यु होनेपर दस दिनका अशौच होता है।

यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।
छिन्ने नाले ततः पश्चान्मृतकं तु विधीयते॥
(जैमिनि)

अर्थात्—जबतक बच्चेका नाल नहीं काटा जाता, तबतक सूतक नहीं लगता और नाल काटनेके बाद ही सूतकका दस दिनतक अशौच रहता है। अशौचके दिनोंमें संध्या नहीं की जाती है। सात दिनोंतक संध्या न करनेसे पुनः उपनयन-संस्कार करनेका विधान है।

संध्यातिक्रमणं यस्य सप्तरात्रमपि च्युतम्।
उन्मत्तदोषयुक्तो वा पुनः संस्कारमर्हति॥
(शौनक)

अर्थात्—सात दिनोंतक जिसका संध्यातिक्रमण हो जाय उसका फिरसे संस्कार करना चाहिये। अशौचके दिनोंमें अमन्त्रक प्राणायाम करनेके बाद गायत्री-मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य देनेका विधान है।

सूतके तु सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्॥
(पैठीनसि)

अशौचे मृतके वापि प्राणायाममन्त्रकम्।
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्॥
(आह्निकसूत्र)

संध्याके सूर्य-परक होनेके कारण ही अशौचमें सूर्यको अर्घ्य देनेमात्रसे उसका फल प्राप्त हो जाता है। इसलिये दस दिनोंके अशौचमें संध्या नहीं करनेसे पुनः संस्कार नहीं करना पड़ता है। पूर्व दिशा सूर्यकी उदय-दिशा है। इस दिशाके भी अधिप.. सूर्य हैं।

पूर्वस्याधिपतिः सूर्य आग्नेयस्य तु चन्द्रमा॥
रविः शुक्रो महीसूनुः स्वर्भानुर्भानुजो विधुः।
बुधो बृहस्पतिश्चेति दिशां चैव तथा ग्रहाः॥
(अमरकोश)

इसलिये ही कूर्मपुराणके स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत्॥
(कूर्मपुराण)

अर्थात्—पूर्वाभिमुख होकर हमेशा विप्रोंको सन्ध्या करनी चाहिये। अर्घ्य, उपस्थान और जप सूर्याभिमुख होकर करनेका विधान तो है ही। जो गानेवाले अर्थात् जपनेवालेकी रक्षा करे उसे गायत्री कहते हैं—

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन कीर्तिता।
(गायत्रीतन्त्रम्)

गायत्रीके देवता सविता हैं। यजुसर्वानुक्रमसूत्रके अनुसार इसका विनियोग देखनेको मिलता है—

तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः। (नित्यकर्मप्रयोग)

कहीं-कहीं पाठ-भेद भी प्राप्त होता है, किंतु उसमें भी गायत्रीके देवता सविता ही हैं।

सविता सूर्यका पर्यायवाची शब्द है—

भानुर्हंससहस्रांशुस्तपनः सविता रविः।
पद्माक्षस्तेजसां राशिश्छायानाथस्तमिस्रहा॥

(अमरकोश)

कुछ विद्वान् सविताका अर्थ प्रसवकर्त्ता या स्रष्टा लगाते हैं। यदि उपयुक्ततः देखा जाय तो पृथ्वीसहित यहाँके सभी जीवोंके स्रष्टा* सूर्य ही हैं। सूर्यकी किरणोंसे अनेक जल-थल-जीवोंकी उत्पत्ति होती रहती है।

विभिन्न विद्वानोंके मतसे गायत्रीके अर्थमें भिन्नता है, होना भी चाहिये, **'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'** और **'शब्दानामनेकार्थत्वात्'**; फिर भी मौलिक बातोंमें समता है।

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (यजुर्वेद)

हम भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकमें व्याप्त सविता-के उस भजनीय तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करती है।

यद्यपि गायत्री एक छन्दका ही नाम है, पर गायत्री-सावित्री मन्त्रार्थसे पता चलता है कि सविता (सूर्य) के प्रकाशमान तेजका नाम ही गायत्री है; क्योंकि गायत्रीको आदित्यमण्डलस्था भी कहा जाता है। गायत्रीके ध्यानमें देखिये।

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलंकारैश्च शोभिता॥
आदित्यमण्डलान्तःस्था ब्रह्मलोकगताथवा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥

(संध्याभाष्य समुच्चय)

सूर्यसे सम्बन्ध होनेके कारण ही गायत्रीको अग्नि-मुखी भी कहा जाता है।

कदाचिदपि नो विद्वान् गायत्रीमुदके जपेत्।
गायत्र्यग्निमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय तां जपेत्॥

(व्यास, कृत्यशि०)

अर्थात्—गायत्री अग्निमुखी है, इसलिये जलमें खड़ा होकर इसका जप नहीं करना चाहिये।

गायत्री-जपका समर्पण भी सूर्यदेवको ही किया जाता है।

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान् सूर्यनारायणः प्रीयताम् न मम।

(नित्यकर्मप्रयोग)

उपर्युक्त तथ्योंसे पता चलता है कि सूर्यमण्डलगत ब्रह्मको संध्या और सूर्यमण्डलगत तेज (शक्ति)को गायत्री कहते हैं। संध्योपासना सूर्यकी ही उपासना है। इसलिये संध्योपासना करनेसे सूर्योपासना या ब्रह्मोपासनाका ही बोध होता है।

---

* गुरुत्वाकर्षणके कारण सूर्यसे एक गोला छिटककर निकला। वह गोला सूर्यके समान ही गर्म था। बहुत दिनोंके बाद वह गोला ठंढा हुआ। वह पिण्ड पानी और मिट्टीमें परिवर्तित होने लगा। इस प्रकार सूर्यसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई। (देखें—विश्वज्ञान कोश, पृ० सं० २६)

मिट्टी, पानी और सूर्यकी रोशनी आदि मूल तत्त्वोंके सम्मिश्रण होनेसे प्रोटोप्लाज्मका उद्भव हुआ। पानीपर प्रोटोप्लाज्मकी ये बूँदें ही इस पृथ्वीके सर्वप्रथम प्राणी थे। इस धरतीके सभी पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े और मानव आदि जीवधारियोंका आदि पूर्वज प्रोटोप्लाज्म ही है। (देखें—विश्वज्ञानकोश, पृ० सं० २६, ३१

गायत्री (सावित्री)का पूजन

गायत्री-देवीका ध्यान

ओङ्कारमध्यनिलयां कमलायताक्षीं
पञ्चाननां बहुविधायुधचारुहस्ताम् ।
तत्त्वार्थवर्णमयविग्रहभासमानां
ध्यायामि तां निगममातरमादिशक्तिम् ॥ १ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, गायत्रीं ध्यायामि ।

आवाहन

आवाहयामि भवतीं भवतीव्रताप-
निर्वापणैकनिपुणैर्द्विजवृन्दवन्द्ये ।
आयाहि देवि नवरत्नविभासमाने
सिंहासने ननु निधेहि पदाब्जयुग्मम् ॥ २ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, गायत्रीमावाहयामि ।

पाद्यसमर्पण

गाङ्गेन निर्मितमिदं पयसा सदूर्वं
गन्धाक्षतं समुदितामितमन्त्रपूतम् ।
गायत्रि पादसरसीरुहयोर्भवत्याः
पाद्यं महेश्वरि मुदा परिकल्पयामि ॥ ३ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, पादयोः पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ्यदान

गन्धाक्षतादिसहितं विविधैः प्रसूनै-
रुल्लासितं कनकरत्नपरिष्कृतं च ।
सावित्रि पाणिकमले विमले भवत्या
अर्घ्यं पवित्रमिदमम्ब समर्पयामि ॥ ४ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि ।

आचमन

गङ्गाजलेन शुचिनाचमनं विधेहि
मातः पुरारिशिरसा परिलालितेन ।
अभ्यङ्गसेवनविधानमथानुगृह्य
स्नानाय देवि वरदे मयि सम्प्रसीद ॥ ५ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, आचमनं समर्पयामि ।

स्नान

गङ्गाकलिन्दतनयेन्दुसमुद्भवादि-
प्राज्यप्रभावतटिनीगणतोयपूर्णैः ।
हैमैर्घटैर्मृगमदादिसुगन्धिभिस्ते
स्नानं परात्परतरं विनिवर्तयामि ॥ ६ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, स्नानं समर्पयामि ।

वस्त्रोपवस्त्रसमर्पण

बालार्कमण्डलनिवासिनि मन्दहासे
गायत्रि योगिजनमानसराजहंसि ।
वस्त्रोपवस्त्रयुगलं सह भूषणौघैः
स्वीकृत्य पाहि परमेश्वरि नः प्रणामान् ॥ ७ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, वस्त्रमुपवस्त्रं समर्पयामि ।

यज्ञोपवीतसमर्पण

यज्ञोपवीतमिदमम्ब धरासुराणा-
मास्योद्गतैः श्रुतिवचोविसरैः पवित्रम् ।
तेजोमयं द्रुतसुवर्णसवर्णमेतत्
सन्धार्य देवि परिपाहि कृपाकटाक्षैः ॥८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

गन्धसमर्पण

काश्मीरनीरमिलितं घनसारशीतं
कस्तूरिकासुरभितं भ्रमरावलीढम् ।
सर्वाङ्गलेपनसुखं मलयोद्भवं ते
मातः समर्प्य परमं समुदं भजामि ॥९॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, गन्धं समर्पयामि ।

पुष्पसमर्पण

नानाभिधानि सुरभीणि मनोहराणि
गुञ्जन्मधुव्रतकुलैः परिवारितानि ।
सम्फुल्लपाटलिसरोजमुखानि मातः
पुष्पाणि ते चरणयोरहमर्पयामि ॥१०॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, पुष्पाणि समर्पयामि ।

सौभाग्यद्रव्यसमर्पण

सौभाग्यलक्षणमिदं परमं सतीनां
सिन्दूरकुङ्कुममुखं वरवस्तुजातम् ।
स्वीकृत्य सर्वसुरसेवितपादपद्मे
सौभाग्यमुज्ज्वलतरं कृपया प्रयच्छ ॥११॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि ।

धूपाघ्रापन

धूपं दशाङ्गपरिमेदुरमासमन्ता-
दाविर्भवत्परिमलाकुलितान्तरालम् ।
देवि प्रसीद सदये रविमण्डलस्थे
सद्यो गृहाण वरराजतपात्रसंस्थम् ॥१२॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, धूपमाघ्रापयामि ।

दीप-दान

अन्तर्बहिस्तिमिरवारणकारणं च
सद्वर्तिपञ्चकयुतं घृतपूरपूतम् ।
ज्योतिर्मयि त्रिभुवनावनचारुशीले
गायत्रि दीपमिमम्ब समर्पयामि ॥१३॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, दीपं दर्शयामि ।

नैवेद्य-निवेदन

सौवर्णपात्रविहितं विविधप्रभेदं
पञ्चप्रकारमपि षड्रससंयुतं च ।
आस्वाद्यमम्ब पुरतस्तव देवमातः
नैवेद्यमद्य मधुरं समुपाहरामि ॥१४॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, नैवेद्यं निवेदयामि ।

ताम्बूलसमर्पण

पलोल्लसत्परिमलं वदनाम्बुजात-
बालातपायितमुदारसुगन्धसारम् ।
ताम्बूलमम्ब करुणावरुणालये ते
मातर्गृहाण पुरतः परिकल्पयामि ॥१५॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणासमर्पण

मातर्द्विजेन्द्रकुलवन्दितपादपद्मे
भक्त्या भवत्करसरोरुहयोर्वितीर्णाम् ।
पूजाविधानमहितां नवरत्नरूपां
तां दक्षिणां निखिलदेवनुते गृहाण ॥१६॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः, दक्षिणां समर्पयामि ।

प्रदक्षिणा

प्रदक्षिणीकृत्य वपुस्त्वदीयं
ज्योतिर्मयं मातरुदारभावे ।
कृतार्थयामि च्युतपापजालं
निजं शरीरं जगदम्ब सद्यः ॥१७॥

नमस्कार

सरसिजनयने विरिञ्चिविष्णु-
प्रमुखसुरेन्द्रनिषेविताङ्घ्रिपद्मे ।
सकलनिगममूलबीजभूते
जय जय देवि नमो नमस्ते ॥ १८ ॥

पुष्पाञ्जलि

स्फुरत्परिमलाकुलभ्रमरगुञ्जनान्मञ्जुलो
मरन्दभरमेदुरो मलयजावलीढान्तरः ।
सभक्ति तव पादयोरयमिहार्प्यते मानसा-
नुरागरसमन्थरं विकसितप्रसूनाञ्जलिः ॥ १९॥

गायत्रीकी महिमा

सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ।
ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ॥
(देवीभा० अ० १६ । १५)

गायत्री-मन्त्रका आराधन समस्त वेदोंका सारभूत है। ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्याकालमें गायत्रीका ध्यान और जप करते हैं। गायत्रीकी अर्चना सभी वेदोंका सार है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥
(मनु० २ । ७९)

एक मासतक ग्रामसे बाहर एकान्त स्थानमें प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जाप करनेवाला द्विज बड़े भारी पापसे भी छूट जाता है, जैसे सर्प केंचुलीसे छूट जाता है।

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।
महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥
(संवर्तस्मृति २ । ८)

गायत्रीद्वारा उपासनासे बढ़कर पापकर्मके शोधनके लिये कोई मन्त्र नहीं है, अतः प्रणव तथा व्याहृति-सहित गायत्रीका जप करें।

गायत्र्या परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥
(शंखस्मृति १२ । १५)

नरकरूपी समुद्रमें गिरे हुएको हाथ पकड़कर बचानेवाली गायत्रीके समान और कोई शक्ति पृथ्वीपर तो क्या स्वर्गमें भी नहीं है।

पुरातत्त्व-सन्दर्भ—

सूर्यपूजाका आद्य स्थान—भारत

(लेखक—श्रीरश्मि त्रिवेदी, एम्०ए०, एल्-एल्०बी०, एडवोकेट)

इन्द्र, अग्नि, वरुण, वायु इत्यादिकी तरह सूर्यकी उपासना भी वेदकालीन है; फिर भी अर्वाचीन इतिहास-विद् इस तरह मानते हैं कि ईस्वी सन् चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें सूर्य-पूजा भारतमें प्रविष्ट हुई। उनके इस कथनके प्रमाणमें दिये जानेवाले तर्कोंको यहाँ उद्धृत किया जाता है।

(१) वराहमिहिरके कथनानुसार (ई० स० छठे शतक) सूर्यके पुजारी मग ब्राह्मण होने चाहिये। यह 'मग' नाम विचित्र है, फिर भी विदेशी-ईरानी नाम 'मेगी'के साथ इसका उच्चारण साम्य है।

(२) वराहमिहिर कहते हैं कि सूर्यमूर्तिको 'व्यङ्ग' (कटिसूत्र) पहनाना चाहिये। यह 'व्यङ्ग' शब्द भी विचित्र है। यह शब्द बैक्ट्रिया (Bactria)के 'आव्यांघ'के साथ साम्य रखता है।

(३) 'भविष्यपुराणके अनुसार सूर्यपुजारी ब्राह्मण मग होने चाहिये। सूर्यमूर्तिका परिधान उत्तरके निवासियों-जैसा है। अबतक प्राप्त सूर्य-मूर्तियोंमें दृष्टिगोचर पादावरण विदेशी सभ्यताका परिणाम है। अत :सूर्यपूजा बाहरसे आयी।' संक्षेपमें इनका उत्तर नीचे दिया जा रहा है।

१—कर्नल टॉडने राजस्थानके इतिहासमें सूर्यभक्त फिर शिलादित्यकी चर्चा की है। शिलादित्यकी सूर्यसे उत्पत्ति, शिलादित्यके पिताका और सूर्यकुण्डका सम्बन्ध, सूर्याश्वकी प्राप्ति, सूर्य-भक्ति इत्यादिका वर्णन उपलब्ध है। इससे अनुमान होता है कि भारतमें अनादिकाल-से सूर्य-मूर्तियोंकी पूजा प्रचलित थी।

२—मन्दसौर (दशोक या दशपुर)का सूर्य-मन्दिर ई० स० ४३७में निर्मित हुआ और ई० स० ४७३में उसका जीर्णोद्धार भी हुआ। ऐसा कथन उपलब्ध है। मेगास्थनीजने इन्दौर तथा पाटलिपुत्रके पास राजगृहमें सूर्यमन्दिर देखे थे।

३—द्वितीय जीवगुप्त सम्राट्का समय छठी शताब्दी माना जाता है। उसका एक शिलालेख भी प्राप्त है। उस लेखमें सूर्य-मन्दिरके निर्वाहके लिये दुर्धरमित्र नामक एक भोजकको ग्राम दान किया गया था, ऐसा उल्लेख है। (देखें—फ्लीटकृत ई० स्क्रीपशन्स आफ दी गुप्त किंग्स, वोल्युम ३, पृ० २२६) वराहमिहिरकृत 'बृहत्संहिता'में भी सूर्यपूजाका उल्लेख है—

'विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः।'

४—भारतकी खुदाई-कार्यमें ई० स० प्रथम शताब्दी-की सूर्यमूर्ति प्राप्त हुई है।

५—ई० स० १४०में कश्मीर-नरेश ललितादित्यने मार्तण्ड-मन्दिरका निर्माण कराया था। ई० स० १६६में भिन्नमालमें भी एक सूर्यमन्दिर था।

६—ग्रीक राजदूत मेगेस्थनीजका भारत-भ्रमणका समय ई० स० पूर्व ३३१का है। उसने राजगृहमें होनेवाली सूर्यपूजाका उल्लेख किया है।

७—'मध्यकालीन भारतका इतिहास' भाग १, खण्ड २, अध्याय ८में उसके कर्ता श्रीसी० वी० वैद्य लिखते हैं कि—'ते फेसीजका कहना है कि ई० स० पूर्व चौथी सदीमें आबुसे पंद्रह मीलकी दूरीपर भिन्नमाल नामक एक तीर्थ है, वहाँ सूर्य एवं चन्द्र दोनोंकी पूजा होती है। इससे सिद्ध है कि ईरानियोंके भारतविजयके पूर्व दीर्घकालसे भारतमें सूर्य-पूजा प्रचलित थी।'

८—'आश्वलायनगृह्यसूत्र'में सूर्यकी मूर्तिपूजाका विधान है—

केचिद् गणपतिमादित्यं शक्तिमच्युतं वाग्नौ वा सूर्ये वा स्वहृदये वा सलिले वा प्रतिमासु वा यजन्ति॥

९—बौद्ध धर्मग्रन्थ 'ब्रह्मजात-सूत्त'में गौतमबुद्धने सूर्यपूजक ब्राह्मणोंकी निन्दा की है।

इनसे सिद्ध है कि मुस्लिमधर्मकी स्थापनाके बाद अर्थात् ई० स० ७ वीं शताब्दीसे पूर्व भी भारतमें सूर्य-मन्दिर तथा सूर्यपूजा प्रचलित थी। अतः सूर्यपूजाको विदेशी मानना उचित नहीं है। अन्य समानताएँ भी देखें—

(१) अफ्रिकामें—झुलु जातिके हबसी भारतमें—झाला राजपूत, (२) अरबस्तानमें—शेख सरदार भारतमें सिक्ख सरदार, (३) राजस्थानमें ही शेखावत—राजपूत हैं, सेक्सरिया—वैश्य हैं। (४) नेपालके पास भूटानमें—भोटिया जाति, कच्छ-काठियावाड़-सौराष्ट्रमें भाटिया जाति।

इस तरह नाम-साम्य होनेपर भी परस्पर कोई भी सम्बन्ध नहीं है तो फिर मग और मेगी शब्द-साम्यताके कारण शाकद्वीपीय ब्राह्मण जो मग कहे जाते हैं, वे ईरानके मेगी लोगोंके वंशज ही हैं, यह कैसे कहा जा सकता है? ऐसे तो मग और मोगल शब्दोंमें भी साम्य है। हंगेरीमें मगियार जाति भी सूर्योपासक है। मगियारोंकी उत्पत्ति मध्य एशियासे है, फिर उन्हें भी मेगी क्यों नहीं माना जाता है? ऐसे ही ब्राह्मणोंके लिये एक पर्याय 'सामग' है। 'मग' शब्दका मूल 'सामग' मानना विशेष योग्य है। ब्राह्मणोंके अर्थमें 'सामगा' उल्लेख श्रीमद्भागवत और पद्मपुराणमें निम्नलिखित है—**गायन्ति यं सामगाः'** (श्रीमद्भा० १२।१३।१)।

'यो दृष्टो निजमण्डपे सुरगणैः श्रीवामनः सामगः।'

शब्द-साम्य एवं अर्थकी दृष्टिसे भी दोनोंमें साम्य है—साम गानेवाला, भजनेवाला अर्थात् सामवेद गानेवाला।

सामवेदके मुख्य देवता सूर्य हैं और उनके गानकार सामग अर्थात् मग है। 'गरुत्मतसंहिता'में मगके लिये सामग शब्दका प्रयोग हुआ है—**सामगानां तु विप्राणां शाकद्वीपनिवासिनाम्।** शाकद्वीपमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये मग, मामग, मानस, मंदग शब्द प्रचलित हैं। मगोंको महाभारतमें शंकरोपासक, भागवतमें वायु-उपासक तथा वायुपुराणमें नारायणोपासक कहा गया है।

ई० स० की ४-५ शताब्दीमें ईरानमें (पारसी धर्ममें) कोई मेगी जाति अस्तित्वमें न थी, कारण, पारसियोंके धर्मगुरु मोबेद कहे गये हैं।

पाली भाषामें भी मग शब्द प्रचलित है। ई० स० ४१३ में बुद्धघोषने 'विशुद्धिमग्ग' नामकी टीका लिखी है। जातककथा (जातकट्ठा)में बोधिसत्व एक अवतारमें मग नामसे प्रसिद्ध थे। 'पाणिनिने'अष्टाध्यायी' (३।४।१९)में **'उदीचां माङो व्यतीहारे'** कहा है। जयादित्यने इसकी 'काशिकावृत्ति'में **'उदीचामाचार्याणां मतेन माङो धातोः'** कहा है। महाभारतके भीष्मपर्वका ११ वाँ अध्याय शाकद्वीप और मग (शाकद्वीपीय) ब्राह्मणोंके वर्णनसे भरा है। महाभारतका रचनाकाल ई० स० पूर्व दूसरी शताब्दी है। वैदिक 'लारूयन-सूत्र' व्याख्यामें (रचनाकाल ई० स०के प्रारम्भसे बहुत पूर्व) **'दर्शनाच्छोकनाशः स्याच्छाकद्वीपनिवासिनाम्'** कहा है। भविष्यपुराणमें तो मगोंकी कथा विस्तारसे है। वायुपुराण तथा स्कन्दपुराणमें भी मगका वर्णन है। 'अव्यङ्ग' शब्द भी किस तरह विदेशी है? अव्यङ्ग (कटिसूत्र)का मूल **आत्योनम्** (कस्ती) जो पारसी पेटपर बाँधते हैं, किस तरह हो सकता है?

कटिसूत्र-धारणका विधान आर्य-शास्त्रोंमें पहलेसे ही रहा है। 'तैत्तिरीयसंहिता'में भी इसका उल्लेख है। नारद-परिव्राजकोपनिषद्में भी **'कौपीनाधारं कटिसूत्रम्'**का विधान है। वराहमिहिरकी इस सूचनासे कि सूर्यमूर्तिका परिधान उत्तरवासीकी तरह होता है, उसका विदेशी तत्त्व सिद्ध नहीं होता है। भारतमें दक्षिणापथके आर्योंकी अपेक्षा उत्तरापथके आर्य विद्या, धर्म, रीति-परम्परा इत्यादि क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ थे। अतः सूर्यमूर्तिकी आकृति, परिधान, अलंकार, नैवेद्य इत्यादि उत्तरनिवासियोंकी तरह हों, यह स्वाभाविक है।

सूर्यमूर्तियोंमें कुछ मूर्तियोंमें चरणाकृतिके स्पष्ट न होनेके कारण हेसीयन बूट (ग्रीक यूनानी योद्धाओंके

*

पहननेवाले बूट) की कल्पना की गयी है; वह अयोग्य है; क्योंकि—१—ईरानियोंके आगमनके पूर्व भारतमें भी सूर्यपूजाका अस्तित्व था। २—ईरानियोंके आगमनके बाद भी निर्मित अनेक सूर्यमूर्तियोंमें स्पष्ट चरणाकृति या आवरण ही दृष्टिगोचर है। ३—भारतकी कोई भी देवमूर्ति बूटधारी नहीं है। ४—ईरानमें कोई भी सूर्यमूर्ति अथवा सूर्यचित्र (जैसे कि ज्यूपीटर, क्युपीड इत्यादि कोई भी देवमूर्ति) ऐसा नहीं है कि जिसमें बूट पहनाये हुए पैर हों। ५—ई० स० की १९ शताब्दी पूर्व किसी भी सूर्यमूर्तिको होलबुट पहनाये हों, ऐसा उल्लेख नहीं है।

प्रभास-पाटनमें प्राप्त सूर्यमूर्तियोंमें पगकी अङ्गुलियों-वाली मूर्तियाँ हैं। वेरावलके खोडीयारमें भी सप्ताश्व रथवाली पाँवकी अङ्गुलियोंवाली मूर्ति है। देहोत्सर्गपर भी ई० स० १९४७में उपलब्ध सूर्यमूर्तिमें भी पैरोंकी अंगुलियाँ हैं। प्रभास-पाटनसे पहले 'वदवार' स्थानमें 'वराह'के प्राचीन मन्दिरके द्वारपर भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य तथा चन्द्रकी मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। उनमें भी सूर्यमूर्ति पैरकी अंगुलियोंवाली है। राजकोटके संग्रहालयमें भी पैरकी अंगुलियोंवाली मारवलकी मूर्ति है। बम्बईमें भी विक्रम-संवत् १९५१ में निर्मित सूर्य-मन्दिरकी सप्ताश्व रथवाली सूर्यमूर्तिमें भी होल-बुट नहीं है। कोणार्ककी सूर्यमूर्ति, गोधादित्य और गुहादित्यकी मूर्ति, वल्लभी युगके माण्डलगान (त० वीरमगान)की सूर्यमूर्ति, १५वीं शताब्दीकी श्रीमाल नगरसे प्राप्त 'जगत्स्वागी' नामक सूर्यमूर्ति—ये सभी मूर्तियाँ चरणाङ्गुलिसहित हैं।

दीपार्णव, काश्यपसंहिता, अपराजितपृच्छा, सूत्रसंतान, शुक्रनीति, हेमाद्रि, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, भविष्य-पुराण, रूपावतार इत्यादि किसी भी ग्रन्थके मूर्ति-प्रकरणमें बूटवाली सूर्यमूर्तिका उल्लेख नहीं है। इनमें पादावरण का ही उल्लेख है। पद्मपुराण, स्कन्दपुराण (नागरखण्ड, उत्तरार्ध) इत्यादि ग्रन्थोंमें सूर्यकी पाद-पूजाका कथन है। साम्बपुराणमें सूर्यमूर्तिका परिमाण (माप) भी दर्शाया है। चरण और चरणाङ्गुलिका भी नाप है।

ईरानी सूर्यमूर्ति धनुषबाणयुक्त है। लेकिन भारतीय सूर्यमूर्तिके हाथमें लाल कमल है। इतना ही नहीं वर्ग, अलंकार, आयुध, वाहन इत्यादिमें इनपर ईरानी या यूनानी छाया भी छू नहीं पायी है। मिश्र, फ्रान्स, एसिरिया, इटली, फिलेण्ड, अमेरिका, पैरू, मध्यएशिया इत्यादि देशोंसे प्राप्त एक भी सूर्यमूर्ति बुटवाली नहीं है। अमेरिकामें भी प्राप्त सूर्यमूर्ति इलोराके सूर्य-शिल्पके साथ साम्य रखती है।

आर्योंकी आद्यभूमिकी तरह सूर्यमूर्ति-पूजाके आद्य स्थानके लिये भी मान्यता परिवर्तित होती रहती है। सूर्यपूजाका मूल स्थान पहले सिथिया माना जाता था। बादमें ईरान माना गया। इसके बाद यूनान और मध्य एशिया। रशियाके आइझर बाइजानकी जबरदस्तीसे आर्य बीजम् बनाया गया है। अभी रशियाके भूस्तर शास्त्री श्रीतोलोस्तोवने दावा किया है कि मध्यएशिया अर्थात् सूर्यके मातहत कज्जाकिस्तान इत्यादि क्षेत्रोंमें पाँच हजार वर्ष पूर्वकी सूर्याग्नी संस्कृतके खण्डहर प्राप्त हुए हैं। Essays On Parses. में प्रो० हेग और The Sacred Books Of The East में प्रो० मेक्समुलर बताते हैं कि जरथोस्त्री धर्म (पारसी धर्म) और सौर धर्म दोनों भिन्न धर्म हैं। जरथोस्त्री धर्मकी स्थापनाके पूर्व ईरानमें भी सौर धर्म प्रचलित था। मध्यएशियामेंसे आर्य ईरानमें गये तब अपने साथ ईरानमें भी अपना यह धर्म साथमें लेते गये। उनके पहले ईरानमें अनार्य धर्म व्याप्त था।

कर्नल टाड तो 'राजस्थानके इतिहासमें लिखते हैं कि सूर्यपुत्र मनु पामीर पर्वतपर (जिसे भारतीय सुमेरु कहते हैं) रहता था, क्या यह किसीको मान्य होगा।

इस तरह भारतीय या पाश्चात्त्य विद्वानोंकी दृष्टिसे, सूर्य-मूर्तिविधान या सूर्य-पूजाकी दृष्टिसे यदि देखें तो सौर धर्मके मूलमें ईरान या अन्य कोई विदेशी तत्त्व नहीं है; किंतु भारत ही है। विदेशसे सूर्य-पूजा भारतमें प्रविष्ट हुई, यह मान्यता केवल कोरी कल्पना ही है। मूलतः सूर्य-पूजा भारतीय है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रद्वारा स्थापित सूर्य-मन्दिर—मोढेरा

(लेखक—श्रीकृष्णनारायणजी पाण्डेय, एम्० ए०, एल्० टी०, एल्-एल्० बी०)

पुराणेतिहासमें प्रसिद्ध रघुवंश या सूर्यवंशके प्रशासकोंके इष्टदेव या आदि पूर्वज भगवान् सूर्यदेव रहे हैं। रामायणकालमें लंकाविजयके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठके निर्देशानुसार तत्कालीन सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका कार्यक्रम बनाया। उन्होंने तीर्थोंकी महिमा बताते हुए कहा कि सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य है, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवताओंने मिलकर पूर्वकालमें सबसे पहले स्थापित किया था। वसिष्ठजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सपरिजन पहले वहाँ जानेका विचारकर पूर्वयात्राविधानका पालन किया। फिर वसिष्ठजीको आगेकर महामाण्डलिक सामन्त राजाओंके साथ उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। आगे जाकर फिर वे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये। गाँवों, प्रदेशों और कई वनोंको लाँघते हुए वे आगे बढ़ते चले गये।

श्रीरामचन्द्रजी दसवें दिन परम उत्तम धर्मारण्यक्षेत्र, सिद्धपुर (—मोढेरा—गुजरात)के निकट पहुँच गये। धर्मारण्यके समीप ही 'माण्डलिकपुर'को देखकर वहीं श्रीरामजीने अपनी सेनाके साथ विश्राम किया। उस समय धर्मारण्यक्षेत्र निर्जन एवं उजाड़ होकर भयानक प्रतीत हो रहा था। आगे बढ़ते हुए वे 'मधुवासनक' नामक पवित्र ग्राममें पहुँचे और प्रतिष्ठाविधिके साथ वहाँ मातृकाओंका पूजन किया। तदनन्तर उन्होंने सुवर्णा नदी (पुष्पावती)के दक्षिण तटपर हरिक्षेत्र (मोढेरा)का निरीक्षण किया एवं नदीके उत्तर तटपर सैनिकोंको उतारकर स्वयं उस क्षेत्रमें भ्रमण करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णा नदीके दोनों तटोंपर श्रीरामेश्वर तथा श्रीकामेश्वर (धर्मेश्वर) शिवलिङ्गोंकी स्थापना की।

रामचन्द्रजीने धर्मारण्यकी भट्टारिका (मातङ्गी) देवीसे उस स्थानका प्राचीन वृत्तान्त जानकर सत्यमन्दिर नामसे धर्मारण्यक्षेत्रका जीर्णोद्धार कराया। उन्होंने पहले महान् पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल देवीमन्दिरको बनवाया और फिर उसके आसपास अनेकानेक सुन्दर बाह्मशाला; ग्रहशाला, तथा ब्रह्मशालाका निर्माण कराया। यह सारा निर्माण-कार्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंका आवाहन कर धर्मकूप-(धर्मेश्वरीवापी-)के समीप कराया गया। इसके बाद यहाँ एक विशाल यज्ञका आयोजन किया गया।

श्रीरामचन्द्रजीने प्रतिष्ठाविधिके साथ अपने कुलके स्वामी भगवान् सूर्यको स्थापित किया, वेदोंसे युक्त ब्रह्माजीकी स्थापना की और महाशक्ति श्रीमाता एवं श्रीहरिको भी स्थापित किया। विघ्नोंका निवारण करनेके लिये गणेशजी एवं अन्य देवताओंकी स्थापना की। हनुमान्जीको वहाँकी रक्षाका भार सौंपकर वे दूसरे तीर्थोंको जानेके लिये तत्पर हुए। मूल स्थानकी तरह इस स्थानके भी चारों युगोंमें चार नाम बदले। इस पवित्र तीर्थस्थलका सत्युगमें धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन तथा कलियुगमें मोहेरक (मोढेरा) नाम हुआ—

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्।
द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥

(स्कन्द पु०, ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्य-मांहात्म्य ५०।६७)

इस रामायणकालीन तीर्थसे सम्बद्ध सभी स्थल आज भी मोढेरा (गुजरात)में विद्यमान हैं। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित यहाँका सूर्यमन्दिर है, जिसका अन्तिम जीर्णोद्धार ११वीं-१२वीं शताब्दीमें कराया गया। यह मन्दिर स्थापत्यकलाका एक भव्य आदर्श है। यह स्थान

पश्चिम रेलवेके बेचराजी (बहुचराजी) स्टेशनसे ३९ कि० मी० दूर है। गुजरातके इस प्रसिद्ध सूर्यमन्दिरको देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि यह मन्दिर इतना पुराना है; परंतु वास्तविकता यह है कि मूलतः इस सूर्यमन्दिरकी स्थापना भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोंके द्वारा हुई। इसका वर्तमान स्वरूप राजपूत-कालका है।

रामायणकी घटनाओंसे सम्बद्ध विभिन्न स्थलोंपर प्रतीकात्मक स्मारकके रूपमें बने मन्दिर इसी प्रकारसे मूलतः प्राचीन होते हुए भी वर्तमान स्थितिमें निरन्तर जीर्णोद्धार होते रहनेसे अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते। रामायणकी ऐतिहासिकतापर शोध करनेवाले विद्वानोंको इस तथ्यकी ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

सूर्यस्नानका आनन्द

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

घटना पैंतीस-छत्तीस साल पुरानी है। नवविवाहित दम्पति। किरायेका कमरा और छोटी-सी जगह। खिड़की भी ऐसी थी कि जहाँ आध घंटे भी धूप न आती।

पति कहता ही रह गया और पत्नीके चलते तुलसीका बिरवा कुम्हलाकर ही रह गया! पति कहता था कि गमला धूपमें रखा जाय, पत्नीकी जिद थी कि गमला खिड़कीपर रखा जाय ताकि तुलसीके बिरवासे छन-छनकर पवित्र हवा आये। लेकिन हवा तो तब आती, जब बिरवा पनपता; किंतु बिना धूपके वह पनपता कैसे?

आखिर तुलसीका वह बिरवा नहीं पनप सका।

×　　　×　　　×

सवाल है कि पेड़-पौधोंमें यह हरी तिमाक्लोरोफील आती कहाँसे है? यह हरी-हरी घास, ये हरे-भरे पौधे, ये हरे-हरे वृक्ष, ये सुन्दर-सुन्दर चहचहे रंग-बिरंगे फूल, यह हरियाली, यह सौन्दर्य, यह शोभा पाते कहाँसे हैं?

वृक्ष और लताएँ, फल और फूल, खेतोंमें खड़े लहलहाते पौधे कहाँसे पाते हैं अपनी जीवनी-शक्ति? वनस्पतिमें, प्राणि-जगत्में यह सुषमा, यह प्राणशक्ति कहाँसे आती है? यह खुशनुमा बगीचा खिलता कैसे है? सबका उत्तर है—

यह है सूर्य भगवान्‌की कृपा।

भगवान् भास्कर ही प्रकृतिके कण-कणमें सुषमा और सौन्दर्य बिखेरते हैं। वनस्पतिका सौन्दर्य उन्हींकी देन है। प्राणि-जगत्में जो आनन्द बिखरा है, उसका उद्गम वहींसे है। सूर्य-किरणोंके प्रकाशमें ही सब जीते हैं, विकसित, पल्लवित और पुष्पित होते हैं।

अनन्त जीवनदायी शक्ति भरी है भगवान् अंशुमालीकी रश्मियोंमें। खुले मैदानमें खेलने-किलकनेवाले पशु-पक्षियोंको देखिये; चाहे स्त्री-पुरुषों, बालकों-बालिकाओंको देखिये; उनके कूदने-फाँदनेमें, उनके हँसने-खिलखिलानेमें उसी जादूगरका जादू भरा है।

और उसका अभाव?

देख लीजिये—अँधेरी कोठरियोंमें रहनेवाले प्राणियोंके जीवनमें, पृथ्वीकी तहमें घुसकर कोयला खोदनेवाले मजदूरोंके चेहरोंपर। उनकी उदासी, कमजोरी, निराशा पुकार-पुकारकर कहती है कि हमें धूपका आनन्द नहीं मिलता। हम भाग्यशाली नहीं हैं।

क्षयरोगके बीमारोंमें सबसे बड़ी संख्या उन्हींकी रहती है। धूपसे वञ्चित रहनेवाले बच्चे कितने दुबले, पतले, मरघिल्ले और सूखारोगसे पीड़ित रहते हैं—कौन नहीं जानता !

तभी तो अंग्रेजी कहावत चल पड़ी है—'Where the sun does not enter doctor must' जहाँ सूर्यको प्रवेश नहीं मिलेगा, वहाँ डॉक्टरको ही प्रवेश मिलेगा।'

और गरीब भारतके स्त्री-पुरुष तो बेचारे रोटी ही नहीं जुटा पाते सुबह-शाम, उनके लिये डॉक्टरका सवाल ही कहाँ आता है ? वे तो सहज ही मौतके घाट उतर जाते हैं। तो फिर सूर्य-प्रकाशका सेवन क्यों न करें ?

सूर्य-किरणोंके बारेमें विज्ञान क्या कहता है—हर चीजको तर्क और प्रयोगकी कसौटीपर कसनेवाला विज्ञान क्या कहता है ? उससे थोड़ा समझें।

वह कहता है कि हम यह तो नहीं बता सकते कि ऐसा क्यों होता है, पर हमारे प्रयोग इस बातके सबूत हैं कि सूर्य-किरणोंमें रोगोंको नष्ट करनेकी अद्भुत क्षमता है। भयंकर-से-भयंकर रोग भी सूर्य-किरणोंकी सहायतासे अच्छे हो जाते हैं, फिर जान लेनेवाला यह क्षय—टी० बी०जैसी बीमारी ही भले क्यों न हो ! सूर्य-किरणोंमें रोगनाशक विशिष्ट क्षमता है

सूर्यको यूनानी भाषामें 'हेलियो' कहते हैं—प्रसन्नतादाता, आनन्ददाता। उनकी किरणोंसे चलनेवाली चिकित्सा-हेलियो थेराणी आज विश्वपर छा गयी है। उससे न जाने कितने रोगी स्वस्थ हो रहे हैं।

ईसाकी शताब्दीके आरम्भमें यूनानके हिप्पोक्रेटसने और उसके बाद हीरो-डोटसने उसपर जोर दिया था, पर उनकी बातोंपर वैज्ञानिकोंने ध्यान नहीं दिया। इधर उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यसे लोगोंका ध्यान इस ओर गया है।

बोनेट (१८४५), आर्नल्ड रिकली (१८४८), पाम (१८९०), फीनसेन (१८९३) ब्रेबीट आदिने सूर्य-किरणोंसे रोगनाशके अनेक प्रयोग किये। १९३० से स्विट्जरलैण्डमें सोलेरियम सूर्यगृह खोलकर डॉक्टर रोलियरने क्षयरोगियोंको अच्छा करके विश्वको चमत्कृत कर दिया।

हुआ यह कि रोलियर, यूरोपके प्रसिद्ध डॉक्टर कोचरके मातहत क्षयरोगियोंकी चिकित्सा करते थे। पद्धति थी रोगीकी हड्डियोंको रगड़-रगड़कर आपरेशन द्वारा उसे रोगमुक्त करनेकी। पर कुछ दिन तो रोगी ठीक हो जाता, और बादमें फिर रोग पनप उठता था। दो-तीन, चार-पाँच ऑपरेशनोंसे लेकर बीस-बीस तक आपरेशन होते, पर फिर भी उसे मौतके घाट उतरना पड़ता।

रोगियोंकी भयंकर पीड़ा और वेदना देखकर रोलियर व्यथित हो पड़े, सोचने लगे। सोचते-सोचते उनकी समझमें आया कि इस रोगके कारणोंमें मूल कारण है—सूर्यप्रकाशका अभाव। मनुष्य अपने शरीरपर दुनियाभरके कपड़े लादकर सूर्यप्रकाशसे वञ्चित होता है और उसीसे यह रोग पनपता है। उसे धूप क्यों न मिले, खुली धूप मिले तो वह स्थायी रूपसे रोगमुक्त हो सकता है।

अपने चिन्तनको व्यवहारमें परिणत करनेके लिये रोलियरने स्विट्जरलैण्डमें समुद्रतलसे ६,००० फीटकी ऊँचाईपर बसे लेसिन नामक गाँवमें अपना 'सोलेरियम'-सूर्यगृह खोला।

खुली धूप, खुली हवाने अपना जादू बिखेरना शुरू कर दिया। क्षयरोगी पूर्णरूपसे स्वस्थ होने लगे। अन्य रोगोंके रोगियोंपर भी सूर्य-प्रकाशका अद्भुत प्रभाव पड़ने लगा।

सूर्य-प्रकाश लीगका अध्यक्ष डॉक्टर सी० डब्ल्यू० सेलीबी सन् लाइट एण्ड हेल्थ (सूर्य-प्रकाश और स्वास्थ्य)

नामक पुस्तकमें लिखता है कि सन् १९२१ में जब मैं डॉक्टर रोलियरके इस चिकित्सालयमें गया था तो कुछ भारतीय डाक्टरलोग रोलियरसे पूछ रहे थे कि इधर तो धूपकी कमी रहती है, पर भारतमें तो धूप-ही-धूप है, वहाँ हम धूपका सदुपयोग कैसे करें ?'

जामनगरके राजा साहब जब यूरोपसे सोलेरियम देखकर आये तो उन्होंने भारत आकर प्रचुर धन लगाकर सूर्यगृह खोला। आज देश-विदेशमें अनेक सूर्यगृह खुले हैं, जो पाचन-तन्त्र, चमड़ी, मज्जातन्तुके रोगोंसे लेकर क्षय-जैसे भयंकर रोगोंकी सफल चिकित्सा करनेमें सफल हो रहे हैं।

गन्धबाबा परमहंस स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजने स्फटिक यन्त्रोंद्वारा सूर्यरश्मियोंको आकृष्ट कर जो चमत्कार दिखाये थे, उनसे बड़े-बड़े वैज्ञानिक चकित रह गये थे। पर यह सूर्य-विज्ञान तो भारतकी पुरातन विद्या है। (देखिये—सूर्याङ्क ७७ पृ०से ८७ तक।) वेदोंमें सूर्यकी किरणोंका—'ऐतश' और 'नीलग्रीव' कहकर वर्णन मिलता है, इनसे रक्तक्षय, रिकेट, स्कर्वी, आष्टियोमेलेशिया, क्षयरोग आदिके अच्छे होनेकी बात कही गयी है। सूर्यकिरणोंमें जो सतरंगीपन है—नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, बैगनी, और लाल रंग—उन रंगोंको खींचकर, उनके शीशोंसे, उनके पानीसे, उनके तेलसे चिकित्साकी परिपाटी आज बहुशः प्रचलित है। एक्सरे तो हमारे दैनिक जीवनकी आवश्यकताका अङ्ग ही बन बैठा है।

तो मूल बात यह है कि सूर्य-किरणोंमें रोगनिवारक और स्वास्थ्यवर्धक अनुपम शक्ति भरी पड़ी है। विटामिन 'डी' के अभावमें महिलाएँ मुरझा जाती हैं और बच्चे सूखारोगके शिकार बन जाते हैं। पर सूर्य तो ठहरा विटामिनोंका भण्डार। लगाइये शरीरपर सरसोंका तेल और थोड़ी देर सूर्यस्नान कर लीजिये—विटामिन 'डी' ही 'डी' मिल जायगा आपको।

विनोबा कहते हैं और ठीक ही कहते हैं कि 'हमारे सामने इतना बड़ा सूर्य खड़ा है। उसे अपना नंगा शरीर दिखलानेकी हमें बुद्धि नहीं होती। सूर्यके सामने अपना शरीर खुला करो, तुम्हारे सारे रोग भाग जायँगे। लेकिन हम अपनी आदत और शिक्षासे लाचार हैं। डाक्टर जब कहेगा कि तुझे तपेदिक हो गया, तब वही करेंगे।……ठंडी आबहवावाले देशोंके डॉक्टर कहते हैं कि बच्चोंकी हड्डियाँ बढ़ानेके लिये उन्हें 'काडलिवर आयल' दो। जहाँ सूर्य नहीं है, ऐसे देशोंमें दूसरा चारा ही नहीं है।……हमारे यहाँ सूर्य-दर्शनकी कमी नहीं। यहाँपर 'महाकाडलिवर आयल' भरपूर है, लेकिन हम उसका उपयोग नहीं करते। हमें लंगोटीपर शर्म आती है।……नंगे बदन रहना असभ्यताका लक्षण माना जाता है। वेदमें प्रार्थना की गयी है—**मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः** (कपिष्ठल संहि० २९। ७) 'हे ईश्वर! हमें सूर्य-दर्शनसे दूर न रख'। वेद और विज्ञान दोनों कहते हैं कि खुले शरीरसे रहो, कपड़ेकी जिल्दमें कल्याण नहीं।' शरीरपर पड़कर धूप तुम्हें चमका देगी।

तो हम यदि अपना कल्याण चाहते हैं, रोगमुक्त होकर स्वस्थ और प्रसन्न जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो उसका एक ही उपाय है; और वह है—सूर्य-स्नान। सूर्यस्नानका आनन्द लीजिये। आपके स्वास्थ्य और आनन्दका बीमा तैयार है।

पर सूर्यस्नानका उपाय—कैसे करें सूर्यस्नान ! उपाय बहुत सीधा-सादा है। बात सिर्फ करनेकी है—

(१) मकानका या छतका कोई खुला एकान्त स्थान खोज लीजिये, जहाँ सूर्य-किरणें मिलती हों।

(२) शरीरपरके तमाम कपड़े उतार दीजिये। विवस्त्रतामें लँगोट या छोटा-सा गमछा पहने रहें।

(३) प्रातःकाल सूर्योदयके समयसे सूर्यस्नान आरम्भ करें। सायंकाल सूर्यास्तके समय भी सूर्य-स्नान कर सकते हैं। प्रखर धूपमें सूर्यस्नान न करें।

(४) सिरको भीगे रूमाल या तौलियासे ढक लें। केलेके पत्ते मिल जायँ तो और भी अच्छा हो।

(५) खुले बदनपर धूप लगने दें।

(६) प्रथम १५ मिनटसे सूर्यस्नानका आरम्भ करें, धीरे-धीरे अवधि बढ़ाकर दो घंटेतक ले जा सकते हैं।

(७) सूर्यस्नानके समयको चार भागोंमें बाँटकर सीधे, चित्त, दाहिने और बायें करवटसे धूप लें।

(८) सूर्यस्नानके बाद ठंडे जलसे तौलिया भिगोकर शरीरको रगड़-रगड़कर स्वच्छ कर लें।

(९) भोजनसे एक घंटा पहले, भोजनके दो घंटे बादतक सूर्यस्नान न करें।

सूर्यस्नानसे दिन-दिन आपका स्वास्थ्य सुधरने लगेगा। तन, मन प्रसन्न होगा। लूटिये यह आनन्द! निःशुल्क! निर्बाध!! एकदम मुफ्त!!!

सूर्य और ब्रह्माण्ड

[वैज्ञानिक समन्वयात्मक दृष्टिकोण]

(तृतीयाङ्क पृ०-सं० ८२ से आगे)

(लेखक—श्रीशिवनारायणजी गौड़)

सूर्य और पृथ्वीके साथ दो और संयोग जुड़े हैं। सूर्य-पृथ्वीकी दूरी और परिक्रमा-पथ बराबर हैं। साथ ही सूर्यका अर्धव्यास ४,३२,००० मीलके लगभग है। यही संख्या हमारे कलियुगकी आयु भी कही गयी है। कहते हैं इसके मूलमें ऋग्वेदकी अक्षरसंख्या है, जिसमें १०,८०० पद और ४,३२,००० अक्षर कहे गये हैं। इनका दुगुना द्वापर, तिगुना त्रेता व चौगुना सत्ययुग मिलाकर दसगुनी चतुर्युगी बन जाती है। ऐसी १ हजार चतुर्युगियोंका १ कल्प होता है, जिसमें १४ मन्वन्तर होते हैं। इस अनुमानसे सृष्टिका समय ४,३२,००,००,००० आता है। संकल्पके अनुसार **ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीय परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे** (अद्ययावत् ५,०००+८०) गताब्दके हिसाब-से सत्ताईस चतुर्युगियोंके ११,६६,४०,००० वर्ष और अट्ठाईसवेंके सत्य त्रेता द्वापरके ३,८८,००० वर्षके साथ कलियुगके ५,०८० वर्ष मिलाकर वैवस्वत मनुसे ईसवी सन् १२,०५,३३,०८० आता है और आदि सृष्टिसे संकल्प संवत् १,९७,२९,४०,००२।

हमारे सौर वर्षकी गणना पृथ्वीद्वारा सूर्यकी एक परिक्रमा पूरी करनेके आधारपर की जाती है। पृथ्वीको अपने ९३० लाख मीलकी यात्रा पूरी करनेमें प्रायः ३६५$\frac{1}{4}$ दिन लगते हैं। वह अपने अक्षपर २३$\frac{1}{2}$°पर झुकी है, इसीसे सूर्यकी किरणें उसपर सदा, सर्वत्र सीधी नहीं पड़तीं। किरणोंके तिरछेपन और दूरीका प्रभाव हमारी ऋतुओंपर पड़ता है। इसी प्रकार सूर्यकी सापेक्ष स्थिति-के प्रभावसे दिन और रात छोटे-बड़े होते हैं। २१-२२ जूनको जब सूर्य विषुवत् रेखापर सीधा चमकता है तो वर्षका सबसे बड़ा दिन होता है। इसके विपरीत २१-२२ दिसम्बरके उसके मकर रेखापर सीधा चमकने-पर सबसे बड़ी रात होती है। २३ सितम्बर और २१ मार्चको दिन-रात बराबर होते हैं, इसी कारण

इस समयको ईक्विनाक्स (Equinox) विषुवत् संक्रान्ति या सम दिवस-रात्रि कहते हैं।

जिस प्रकार चाँद पृथ्वीकी परिक्रमा करता है और पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है; उसी प्रकार आकाशमें ऐसे आठ पिण्ड और हैं, जो सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। सामान्य दृष्टिसे देखनेपर आकाशमें ५ तीव्र प्रकाश-युक्त तारे दिखायी देते हैं। इनके नाम सूर्यसे दूरीके हिसाबसे बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, गुरु या बृहस्पति और शनि हैं। ये सूर्यके प्रकाशको परावर्तित करते हैं। इनका प्रकाश स्वकीय नहीं होता, इसलिये ये दूसरे तारोंकी तरह चमकते नहीं। इन्हें ग्रह कहते हैं। पहले ९ ग्रह माने जाते थे, पर उनमें राहु और केतुकी गणना की जाती थी। अब तीन नये ग्रह और खोजे गये हैं, जो क्रमशः यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटोके नामसे जाने जाते हैं।

सूरज और चाँदके बाद आकाशमें सबसे अधिक चमकीला तारा शुक्र दिखायी देता है। पर वह तारा नहीं है—यद्यपि उसे बोलचालकी भाषामें प्रातःकालीन और सायंकालीन तारा कहते हैं। दोनों वास्तवमें एक ही तारा है—इसका पता तो लोगोंको बहुत दिनों बाद चला।

सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी (९३० लाख मील) की एक ईकाई मान लें तो इन ग्रहोंकी दूरी इस अनुपातमें होगी। बुध $\frac{१}{३}$, शुक्र $\frac{३}{४}$, मंगल १$\frac{१}{२}$, गुरु ५, शनि ९$\frac{१}{२}$, यूरेनस १९, नेपच्यून ३०, प्लूटो ४०।

दूसरे शब्दोंमें सूर्य और पृथ्वीकी दूरीको १ फुट मान लें तो सूर्यका निकटतम ग्रह बुध उससे केवल ५ इंच दूर होगा, शुक्र ८$\frac{१}{२}$ इंच, मङ्गल १$\frac{१}{२}$ फुट, गुरु ५ फुट, शनि ९$\frac{१}{२}$ फुट, यूरेनस १९ फुट, नेपच्यून ३० फुट और प्लूटो ४० फुटकी दूरीपर दिखायी देगा।

सभी ग्रहोंका सूर्यसे तुलनात्मक अध्ययन बोधवर्धक ही नहीं, रोचक भी है। नीचेके फलकसे इसे स्पष्ट-रूपमें समझा जा सकता है—

नाम	सूर्यसे दूरी लाख मीलोंमें	दिनमान	व्यास मीलोंमें	धरातलका अधिकतम तापमान फा०	चंद-संख्या
सूर्य			८६५३८४	१०,०००	
चन्द्र		२७।३२२ दिन (पृथ्वी-परिक्रमा)	२१६०	२१२	
बुध	३६०	८७।०६९ दिन	३१००	७७०	
शुक्र	६७३	२२४।७०१ दिन	७७००	१४०	१
पृथ्वी	९३०	३६५।२५ दिन	९०२७	१४०	१
मंगल	१४१७	१व०८८१ (६८७ दिन)	४२००	८५	२
गुरु	४८३९	११ व ८६२ (१२ व)	८८७००	२१५	१२
शनि	८८७१	२९ व० ४५८ (३० व०)	७५१००	२४०	९
यूरेनस	१७८४०	८४ व० १३	३२०००	३००	५
नेप्च्यून	२७९५५	१६४ व० ७०४	२७७००	३५०	२
प्लूटो	३६७५३	२४८ व० ४३०	३६००	४००	०

मङ्गल लाल रंगका ग्रह है, जिसपर वातावरण है।

बुध छोटा तथा गरम तेज चालवाला ग्रह है।

शुक्र बादलोंसे घिरा है, पर ओषजन-रहित है।

बृहस्पति अपने बृहद् आकारके कारण बृहस्पति कहलाता है। वहाँका दिन पृथ्वीके आधेसे कम, लगभग १० घंटेका होता है, पर वर्ष पृथ्वीसे १२ गुना है। इसके १२ चाँद हैं, जिनमेंसे ८ एक ओर उदयास्त होते हैं तो ४ उनकी विपरीत दिशामें चलते हैं।

कोरी आँखोंसे देखे जानेयोग्य ग्रहोंमें शनि सबसे दूर है। ३० वर्षकी धीमी यात्राके कारण इसे शनैश्चर (मन्दगामी) कहते हैं। शनिके एकके ऊपर एक इस प्रकार तीन वलय हैं जो उसे भव्य बनाये हुए हैं। सबसे बाहरी वलयका व्यास १,७१,००० मील है, जिसकी पट्टी १०,००० मील चौड़ी है। मध्यम वलयका व्यास १,४५,००० मील है और यह पट्टी १६,००० मील चौड़ी है। भीतरका व्यास १२,००० मील है। यह पट्टी शनिके विषुवत्से ७,००० मील ऊपर है।

इनमें लघु पिण्डोंका समूह कारोंकी तरह चक्कर लगाते रहते हैं। शनिके ८ चाँद एक ओर और नवाँ उनके विपरीत दिशामें चक्कर लगाता है।

मङ्गल एवं गुरुके बीच बड़ी लम्बी दूरी है, पर उसमें भी बीचके भागमें अनेक ग्रह-पिण्डोंका समुदाय विकीर्ण है, जिनमें एक मीलसे लगातार ४७० मीलतकके ग्रह-पिण्ड घूमते रहते हैं। लगता है, ये किसी अतीत ग्रहके भग्नावशेष हैं।

सदियोंतक हमारे ग्रह शनितक सीमित रहे, पर १७८१ में हर्शेलने यूरेनसकी खोज की। नेप्च्यून और प्लूटोकी खोज सिद्धान्तोंकी बुनियादपर हुई। १८४६ में लेवेरियाने गणितसे नेप्च्यूनकी स्थितिका निश्चय किया। अमेरिकन खगोलवेत्ता लावेलने प्लूटोकी स्थितिकी भविष्यवाणी की और उसीके आधारपर १९३० में प्लूटोकी खोज हुई।

हमारे सौरमण्डलमें ग्रहोंके अतिरिक्त कुछ उल्काएँ हैं, जो टूटते तारोंके रूपमें दिखायी देती हैं। ये तारे नहीं होकर कुछ ज्वलनशील पदार्थ हैं, जो हमारे वातावरणके स्पर्शसे जलकर वहीं भस्म हो जाते हैं। उनमेंसे कुछ बड़े आकारवाले पिण्ड पृथ्वीतक पहुँच जाते हैं, उन्हें उल्काश्म कहते हैं।

पुच्छल तारे भी तारे नहीं हैं। चमकमें तारे और पीछेकी ओरका फैलाव पूँछकी ओर होनेसे उन्हें पुच्छल तारा कहा जाता है। यह पूँछ सूर्यसे विपरीत दिशामें मीलों लम्बी होती है, पर इतनी विरल होती है कि १८६१में पृथ्वी उसके भीतरसे अक्षत रहते गुजर गयी। इस रूपमें इनसे भयभीत होना विज्ञानदृष्ट्या अकारण ही प्रतीत होता है। (फलित शास्त्रकी दृष्टिसे वे दुर्लक्षण सूचक तो होते ही हैं।)

भेदमें अभेद खोजते-खोजते हमारी दृष्टि चञ्चलतामें भी स्थिरता खोजनेकी कोशिश करती है। सबसे पहले हमने पृथ्वीको स्थिर माना, आगे चलकर सूर्यको स्थिर माना, फिर आकाशगङ्गाको स्थिर माना। इसी प्रकार पहले हमारे लिये पृथ्वी केन्द्रमें थी, फिर सूर्यको केन्द्रमें माना, तत्पश्चात् उसे आकाशगङ्गाको केन्द्रमें माना, आकाशगङ्गाको पृथ्वीका केन्द्र माना गया। पर हमारी दोनों ही दृष्टियाँ दृश्याभास थीं। जिस रेलगाड़ीमें हम बैठे हैं, उसके पासकी गाड़ीके चल पड़नेपर हमें अपनी ही गाड़ी चलती दिखायी देती है। हमारी रेलगाड़ी चलती है, पर हमें पेड़ चलते दिखायी देते हैं और

पासके पेड़ सबसे तेज भागते मालूम पड़ते हैं। हमारे निकटका पदार्थ कम चमकीला होनेपर भी दूरके तेज पदार्थसे अधिक चमकीला दिखायी देता है। पासकी वस्तु छोटी हो तब भी दूरकी बड़ी वस्तुसे बड़ी प्रतीत होती है। हमारी आँखोंके देखनेकी एक सीमा है, दूरबीनसे देखनेकी भी एक सीमा है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और दूर-से-दूरके पदार्थ हम देख नहीं पाते। ऐसी दशामें हमें हर क्षेत्रमें दृश्याभास होता है, दृष्टिभ्रम होता है। जिस सूर्यको हम पृथ्वीकी परिक्रमा करनेवाला समझते थे, पृथ्वी खुद उसकी परिक्रमा कर रही है, पर स्वयं सूर्य भी स्थिर नहीं है। वह भी अपने अक्षपर १२ मील प्रति सेकेण्डकी गतिसे २५ दिनमें एक चक्कर पूरा कर लेता है।

इस प्रकार हमारे सौरमण्डलका केन्द्र सूर्य अपने अक्षपर भ्रमण कर रहा है, ग्रह उसके चारों ओर अपनी कक्षाओंमें भ्रमण कर रहे हैं। हमारे सौर-मण्डलमें इन ग्रहों और उपग्रहों (ग्रहोंके चन्द्रमाओंके) अतिरिक्त लगभग हजार धूमकेतु और लाखों उल्काएँ हैं। इनके अंदर शब्दहीन तमस्‌का विस्तार है, जिसका तापमान शून्य फारेनहाइटसे भी ४५९.४° कम है। उस अन्तरालमें हमारा पूरा सौरमण्डल परिक्रमा कर रहा है, उस आकाशगङ्गाकी, जिसका वह एक अंशमात्र है।

मोटे रूपमें आकाशगङ्गा हमारे सिरपर फैला एक विस्तृत तारापथ-जैसा है, पर हम उसी नावमें बैठे हैं, जिसमें हमारी आकाशगङ्गा आकाशमें विचरण कर रही है, इसलिये उससे हम अपने आपको भिन्न मानते हैं, पर हम उस आकाश-गङ्गाके केन्द्रके एक छोरपर हैं। वहाँ भी हम केन्द्रमें नहीं हैं, अकेले हैं और सौरमण्डलके रूपमें तो हमारी सृष्टि एकाकी ही है और जीवनके बारेमें सम्भवतः हमारे सौरमण्डल और उसमें भी केवल हमारी पृथ्वीको ही जीवनयुक्त होनेका विशेषाधिकार प्राप्त है। इस विशिष्टताको छोड़ अन्य बातोंमें हम बौने हैं और आकाशगङ्गाकी तुलनामें सूर्य ही नहीं, हमारा सौर-मण्डल भी एक लघु वामन ही है। (क्रमशः)

आकाशगङ्गा और सूर्य

सूर्यके समान एक खरबसे भी अधिक तारे हैं, जिनको अब सम्मिलित रूपसे मन्दाकिनी-संस्था कहा जाता है। हमारी मन्दाकिनी-संस्था बहुत बड़ी है, तो भी अनन्त दूरीतक विस्तृत नहीं है। हम अपनी मन्दाकिनी-संस्थाको आकाशगङ्गाके रूपमें देखते हैं। आकाशगङ्गा शब्दसे हम उस प्रकाशमय मेखलाको सूचित करते हैं, जो पृथ्वी-निवासियोंको आकाशमें दूधिया मार्गके समान दिखायी पड़ती है। आकाशमें जितने तारे दिखायी पड़ते हैं, वे प्रायः सभी अपनी मन्दाकिनी-संस्थाके हैं। × × × मन्दाकिनी-संस्थाके प्रायः मध्य धरातलमें ही हमारा सूर्य है, परंतु वह केन्द्रपर नहीं है, केन्द्रसे किनारेकी ओर प्रायः दो-तिहाई हटा हुआ है। ×××आकाशगङ्गा वह दीप्तिमय धारा है जो आकाशमें तारोंसे पटी नदी-सी जान पड़ती है। गर्मीके दिनोंमें स्वच्छ अँधेरी रातमें सूर्यास्तके दो-तीन घंटे बाद आकाशगङ्गाका सबसे अधिक चमकीला भाग हमें प्रायः शिरके ऊपर दिखायी पड़ता है। यदि पास-पड़ोसमें बड़े नगरकी चकाचौंध करनेवाली रोशनियाँ कोई न हों तो और भी अच्छा होगा। आकाशके एक छोरसे दूसरे छोरतक विस्तृत आकाशगङ्गा बहुत स्पष्ट और सुन्दर दिखायी पड़ती है। उत्तरकी ओर यह देवयानी (कैसोपिया) तारामण्डलमेंसे होकर जाती है और दक्षिणकी ओर धनु नामक तारामण्डलमेंसे होकर। देवयानीसे हंसतक आकाशगङ्गामें केवल एक धारा दिखायी पड़ती है, कहीं सँकरी कहीं चौड़ी, परंतु, हंससे धनुतक दो धाराएँ दिखायी पड़ती हैं। बीचमें काली-सी जगह दिखायी पड़ती है, जिसे बृहत् चीर (दि ग्रेट रिफ्ट) कहते हैं। हंसमें आकाशगङ्गा अपेक्षाकृत अधिक चमकीली है, परंतु ढाल (स्क्यूटम) नामक तारामण्डलमें इसके सबसे अधिक चमकीले भाग दिखायी पड़ते हैं।

('नीहारिकाएँ' से साभार)

व्रत-सन्दर्भ—

आदित्यव्रत (३)

वारव्रत (श्रुति, स्मृति, पुराणादि)

सप्ताहमें सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि—ये सात वार यथाक्रम हैं और एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक रहते हैं। तिथि आदिकी क्षय-वृद्धि अथवा उनके मानका न्यूनाधिक्य होता है, किंतु वारोंमें ऐसा नहीं होता। जिनके नामसे वार प्रसिद्ध हैं, उनके अधिष्ठाता सूर्य आदि सात ग्रह आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। उनमेंसे सूर्य निरञ्जन-निराकार ज्योतिःस्वरूप परमात्माकी प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति हैं और चन्द्रादि छः ग्रहों तथा अन्य सभी तारागणोंको प्रकाशित करते हैं। इसी कारण शास्त्रकारोंने—'ग्रह-नक्षत्रादि सभीमें परमेश्वरका अंश होना बतलाया है और इस कारण उनके निमित्तसे जप, दान, प्रतिष्ठा, पूजा और व्रत आदिके विधान नियत किये हैं। अन्य देवी-देवताओंके व्रतोंकी भाँति सुख-सौभाग्यादिकी उपलब्धिके हेतुसे तो वारोंके व्रत करते ही हैं, साथ ही जन्मलग्न, वर्षलग्न, मासलग्न, उनकी दशा-विदशा, अन्तर-प्रत्यन्तर और गोचराष्टक वर्गादिमें कोई ग्रह अनिष्टकारी हो तो उसकी शान्तिके लिये भी व्रत किये जाते हैं। इसी विचारसे यहाँ वार-व्रतोंमें रविवार-व्रत लिखे गये हैं।

धर्मशास्त्रोंने जिस प्रकार ग्रहोंमें ईश्वरका अंश निर्धारित किया है, उसी प्रकार सुवर्णमें भी ईश्वरका अंश सूचित किया है। इस कारण व्रतादिक देवपूजामें सुवर्णकी मूर्ति स्थापित की जाती है। रस-शास्त्रमें ताँबे, चाँदी आदिको सुवर्णके रूपमें परिणत करनेका विधान और ताँबाको सुवर्णका सहयोगी कहा है, इस कारण सोनेके अभावमें चाँदी और चाँदीके अभावमें ताँवा काममें लिया जा सकता है।

रविवारव्रत (भविष्यपुराण)

चैत्र या मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षमें पहले रविवारको गोबरसे चौका लगाकर उसपर चन्दनसे द्वादशदल पद्म लिखे। उसके मध्यमें सूर्यकी मूर्ति स्थापित करके षोडशोपचारसे पूजन करे। विशेषता यह है कि चैत्रके व्रतमें 'भानु' नामकी पूजा, घी और पूरीका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, मिठाईका दान और तीन पल (तीन छटाँक) दूधका प्राशन (भोजन) आदि करना होता है। वैशाखमें तपनका पूजन, उड़द और घीका नैवेद्य, दाखका अर्घ्य, उड़दका दान और गोबरका प्राशन विहित है। ज्येष्ठमें 'इन्द्र' (सूर्य)का पूजन, दही और सत्तूका नैवेद्य, आम-फलका अर्घ्य, चावलोंका दान और दध्योदनका भोजन कहा गया है। आषाढ़में 'सूर्यका' पूजन, जायफलका नैवेद्य, चिउड़ाका अर्घ्य, भोजनका दान और तीन काली मिर्चोंका प्राशन करना होता है। श्रावणमें 'गभस्ति'का पूजन, सत्तू और पूरीका नैवेद्य, चिउड़ेका अर्घ्य, फलोंका दान और तीन मुट्ठी सत्तूका भोजन किया जाता है। भाद्रपदमें 'यम' (सूर्य)का पूजन, घी-भातका नैवेद्य, कूष्माण्डका अर्घ्य, उसीका दान और गोमूत्रका प्राशन विहित है। आश्विनमें 'हिरण्यरेता'का पूजन, शर्कराका नैवेद्य, दाडिमका अर्घ्य, चावल और चीनीका दान तथा तीन पल चीनीका भोजन कहा गया है। कार्तिकमें 'दिवाकर'का पूजन, खीरका नैवेद्य, केलेका अर्घ्य, खीरका दान और उसीका भोजन भी विहित है। मार्गशीर्षमें 'मित्र'का पूजन, चावलोंका नैवेद्य, घी, गुड़ और श्रीफलका अर्घ्य, गुड़-घीका दान और तीन तुलसीदलोंका भक्षण कहा है। पौषमें 'विष्णु'का पूजन, चावल, मूँग और तिलोंकी खिचड़ीका नैवेद्य, बिजौरेका अर्घ्य, अन्नका दान और पावभर घीका भोजन विहित है। माघमें 'वरुण' (सूर्य) का पूजन, केलेका नैवेद्य, तिलोंका अर्घ्य, गुड़का दान और तिल-गुड़का भोजन एवं फाल्गुनमें 'सूर्य'का पूजन, दही और घीका नैवेद्य, जमीरीका अर्घ्य,

दही और चावलोंका दान और तीन पल दहीका प्राशन करे। इस विधिमें यम तथा इन्द्र आदिके नाम आये हैं, वे सूर्यके ही नाम हैं। यह व्रत वर्षपर्यन्त करनेके बाद उद्यापन करे तो सब प्रकारके रोग-दोष दूर होते हैं।*

कुष्ठहर आशादित्य रविवारव्रत (स्कन्दपुराण)

आश्विन शुक्लके रविवारको प्रातःकाल स्नानादि करके—**'मम शुभाशासिद्धये आशादित्यव्रतमहं करिष्ये'**—ऐसा संकल्प करके शुद्ध भूमिमें गोबरसे गोल मण्डल बनाकर केशर और सिन्दूरसे बारह दलका पद्म बनाये। उसके मध्यमें नारायण सूर्यकी मूर्ति स्थापित करके षोडशोपचार विधिसे पूजन करे। इसमें पुष्पार्पण करनेके बाद **ॐ सूर्याय नमः पादौ, ॐ वरुणाय नमः जंघे, ॐ माधवाय नमः जानुनी, ॐ धात्रे नमः ऊरु, ॐ हरये नमः कटिम्, ॐ भगाय नमः गुह्यम्, 'ॐ सुवर्णरेतसे नमः नाभिम्, ॐ अर्यम्णे नमः जठरम्, ॐ दिवाकराय नमः हृदयम्, ॐ तपनाय नमः कण्ठम्, ॐ भानवे नमः स्कन्धौ, ॐ हंसाय नमः हस्तौ, ॐ मित्राय नमः मुखम्, ॐ रवये नमः नासिके, ॐ खगाय नमः नेत्रे, ॐ पूष्णे नमः कर्णौ, ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ललाटम्, ॐ आदित्याय नमः शिरः और ॐ भास्कराय नमः से सर्वाङ्गं पूजयामि** कहकर गौके प्रत्येक अङ्गकी पूजा करके धूप-दीपादिके द्वारा अर्चन करे। इसमें **'पूजयामि'** शब्द सब नामोंके साथ लगाये। पूजन कर लेनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके उसका उद्यापन करे। इस व्रतसे कोढ़-जैसी पापजन्य और पीढ़ियोंतक रहनेवाली बीमारियाँ निर्मूल हो जाती हैं। पूजनमें—

यथाशा विमलाः सर्वास्तव भास्कर भानुभिः।
तथाशाः सफलाः नित्यं कुरु मह्यं मयार्चिता॥

से अर्घ्य दे और निम्नलिखित श्लोकसे प्रार्थना करे।

नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय।
सामर्ग्यजुर्धामनिधेर्विधातर्भवाब्धिपोताय नमः सवित्रे॥

(व्रतराज, स्कन्दपु० आशादित्यप्रकरण २९)

वैदिक रविवार-व्रत (हंसकल्प)

रविवारके दिन प्रातः-स्नानादिके पश्चात्—

तिथिर्विष्णुस्तथा वारं नक्षत्रं विष्णुरेव च।
योगश्च करणं विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥'

इस मन्त्रसे पञ्चाङ्गस्थ विष्णुका स्मरण करके सूर्यके सम्मुख नतमस्तक हो और अञ्जलि बाँधकर नीचे लिखे मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ साष्टाङ्ग (सम्पूर्ण शरीरको पृथ्वीपर फैलाकर) नमस्कार करे; यथा—**'ॐ ह्रां हंसः, शुचिषन्मित्राय नमः। ॐ ह्रीं वसुरन्तरिक्षसत्, रवये नमः। ॐ ह्रूं होता वेदिषत्, सूर्याय नमः। ॐ ह्रैं अतिथिर्दुरोणसत्, भानवे नमः। ॐ ह्रौं नृषत्, खगाय नमः। ॐ ह्रः वरसत्, पूष्णे नमः। ॐ ह्रां सद्सत्, हिरण्यगर्भाय नमः। ॐ ह्रीं व्योमसत्, मरीचये नमः। ॐ ह्रूं अब्जागोजा, आदित्याय नमः। ॐ ह्रैं ऋतजाद्रिजा, सवित्रे नमः। ॐ ह्रौं ऋतमोम्, अर्काय नमः। ॐ ह्रः बृहदोम्, भास्कराय नमः।** इस प्रकार जितनी आवृत्ति की जा सके, करे। फिर **१. ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्, २. ॐ महाश्वेताय ह्रीं ह्रीं सः। ३. ॐ खखोल्काय नमः** और **४. ॐ ह्रीं ह्रीं सः सूर्यायेति।**—इन चार मन्त्रोंमेंसे किसी एकका यथासामर्थ्य जप करके नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे। इस प्रकार एक वर्ष करके समाप्तिके दिन सूर्योपासक वेदपाठी ब्राह्मणोंको भोजन कराये और फिर स्वयं भोजनकर व्रतका विसर्जन करे। (क्रमशः)

---

* (१) इस व्रतका वर्णन सौरधर्मोक्त रविवार-व्रत (स्कन्दपुराण) में भी आया है, परंतु वहाँ नदी आदिमें स्नान करनेके पश्चात् देव-पितरोंका तर्पण करके शुद्ध भूमिमें द्वादशदल कमल बनाकर सूर्यनारायणकी पूजा करनेका विधान है, शेष नियम प्रायः एक-से हैं। (२) उद्यापनका संक्षिप्त विधान द्वितीयाङ्कके ३४ वें पृष्ठमें देखें।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

घोर संकटमें प्राण-रक्षा

बचपनसे ही गङ्गा, गीता, गायत्री, गोमाता और गोपालपर मेरी अत्यधिक श्रद्धा है। मेरी मान्यता है कि यदि इनमेंसे एकको भी मनुष्य भाव और निष्ठासहित पकड़ ले तथा श्रद्धा-विश्वासपूर्वक साधन करे तो निःसंदेह वह भवसागरसे पार हो सकता है। गतवर्षके १५ सितम्बरकी बात है। उस दिन मैं आठ बजे जब घर पहुँचा, तब ज्ञात हुआ कि पिताजी खेतमें मकईकी रखवाली करने गये हुए हैं तथा वर्षाके कारण उनका भोजन भी अभीतक नहीं भेजा जा सका है। अपने ९५वें वर्षीय वयोवृद्ध पूज्य पिताजीको खिलाये बिना मेरे लिये भोजन करना अनुचित था। मैंने तुरंत कुर्ता उतारा, एक हाथमें पानीका लोटा तथा दूसरेमें टार्च और कन्धेपर खानेकी सामग्री रखकर खाली पैर अँधेरी रातमें खेतकी ओर रवाना हुआ।

वर्षाकी अँधेरी रातमें मैं लगभग एक कि०मी० ही चला था कि अन्धकारमें किसी जानवरकी फुफुकार सुनायी पड़ी। अनुमान किया कि गोह हो सकती है। भयभीत होकर आर्तभावसे गायत्री-मन्त्र जोर-जोरसे पढ़ना आरम्भ कर दिया। मैं जब एक स्थानपर ठेहुने-भर पानीमें होकर दोनों ओर ईखके खेतोंके बीचसे होकर गुजर रहा था तभी मेरे दो कदम आगे एक विषधर सर्प फन फैलाये रास्तेपर आ गया। किंतु दूसरे ही क्षण किसी प्रेरणावश वह रास्तेसे स्वतः दूर हट गया। थोड़ी देर बाद जब मैंने टार्चकी रोशनीमें उसे देखा तो अवाक् रह गया। सर्प अपना फन उठाये मुझपर वार करनेके लिये उद्यत था। मेरा जप उसी तरह आर्तस्वरमें चल रहा था। उन संकटपूर्ण क्षणोंमें मैंने यह समझ लिया कि अब मेरी मृत्यु निश्चित है। मैं सोच रहा था कि अब तो यह सर्प मुझे काट ही लेगा और मैं अब निश्चितरूपसे मर जाऊँगा। किंतु तभी एक चमत्कार-सा हुआ। सहसा वह सर्प एक विचित्र ध्वनिके साथ जोरसे कराहते हुए-सा उलटकर दूर चला गया। मौका पाते ही मैं शीघ्रतासे आगे बढ़ गया। पिताजीको भोजन कराकर पुनः दूसरे रास्तेसे सकुशल घर लौट आया।

उस रातकी घटनाके विषयमें विचार करनेपर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि माँ गायत्रीकी विशेष अनुकम्पासे ही उस दिन मैं कालके मुखमें जानेसे बच गया। गायत्री माता है। वह सबकी रक्षा करती है।

—हरगौरी, साहित्यालङ्कार

(२)

जब मैं गोली लगनेसे बचा

बात उन दिनोंकी है, जब मैं युनिवर्सिटीमें पढ़ता था। एक दिन दोपहरके समय मैं नदीके किनारेसे टहल करके लौट रहा था। धूपसे रक्षा-हेतु मैं सरपर स्ट्रा हैट (घासकी टोपी) पहने हुए था।

नदीसे घरतकका इलाका काफी सुनसान है। जगह-जगह मिट्टीके जमा होनेकी वजहसे छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बन गयी हैं। अभ्यासवश मैं नाम-जप करते हुए आ रहा था। उसी वक्त अचानक घुटनेमें जोरकी खुजली महसूस हुई। खुजलानेके लिये मैं ज्यों ही झुका त्यों ही 'सूँ'की आवाज हुई और मेरी टोपी सिरसे उड़ गयी। मैंने पासमें गिरी टोपीको उठाकर देखा, तो उसमें छोटा-सा छेद बना हुआ था। उसी वक्त मुझे कहीं राइफलसे गोली छूटनेकी आवाज सुनायी दी। आवाज आनेकी दिशाकी ओर मैंने देखा तो पाया कि मैं जहाँ खड़ा था, वहाँसे करीब तीन सौ गजकी दूरीपर सैनिकोंकी एक टुकड़ी चाँदमारी (गोली दागनेका अभ्यास) कर रही है। यह देखनेके साथ ही मुझे समझनेमें देर न

लगी कि मेरी टोपीमें छेद होनेका कारण गोली लगना ही था । मैं उसी वक्त बेतहासा घरकी ओर दौड़ पड़ा ।

१९७३ की उस घटनाको सोचकर अब भी रोमाञ्चित हो उठता हूँ । यदि मुझे अचानक घुटनेमें खुजली महसूस न हुई होती और मेरे झुकनेमें एक क्षणकी भी देरी हो गयी होती तो गोली टोपीको भेदनेके बदले मेरे सिरको भेदकर चली जाती तथा मैं दूसरे ही क्षण मृत पड़ा होता । मैं सोचता हूँ कि खुजली तो महज एक बहाना थी; सही तो मुझे बचानेका प्रभुका लक्ष्य ही था ।

—पूरनकुमार छेत्री

(३)

सही निर्वाचन

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहमलिंकनने रक्षा-मन्त्रीके स्थानपर एक उद्दण्ड स्वभावके व्यक्तिको पदासीन किया । इस व्यक्तिसे राष्ट्रपतिका पुराना वैर था । इनके विषयमें वह नाना प्रकारकी बातें, टीका-टिप्पणी तथा आलोचना किया करता था । राष्ट्रपतिके कुछ शुभचिन्तक एवं मित्र उनके पास पहुँचे और बोले—'रक्षामन्त्रीके पदपर आपने जिस व्यक्तिको नियुक्त किया है, उसके विषयमें क्या आप भलीभाँति जानते हैं ?'

'हाँ, जानता हूँ ।'—राष्ट्रपतिने उत्तर दिया ।

'समय-समयपर वह आपको गोरिल्ला कहता रहा है, यह भी जानते हैं ?'

'हाँ, जानता हूँ ।'

'कई जन-सभाओंमें उसने आपको भाँड़ कहा है ।'

'मुझे मालूम है ।' लिंकनने मुस्कराते हुए कहा ।

'अनेक बार उसने आपका अपमान भी किया है ।'

'वह भी मुझे मालूम है ।' राष्ट्रपतिका संक्षिप्त-सा उत्तर था ।

'इतना सब कुछ मालूम होते हुए भी आपने उस व्यक्तिको इतने महत्त्वपूर्ण पदपर कैसे बैठा दिया ?' मित्रोंने खीझकर पूछा ।

'तो क्या हुआ ? महत्त्वपूर्ण पदपर ही तो बैठाया है, गलत स्थानपर तो नहीं बैठाया ?' चेहरेपर उसी प्रकार स्वाभाविक मुस्कान लाते हुए लिंकनने कहा ।

'पर आप यह क्यों नहीं समझते कि·········।'

लिंकनने बात बीचमें काटते हुए कहा—'मैं कुछ समझूँ, इससे पहले आपलोग यह क्यों नहीं समझते हैं कि वह एक योग्य व्यवस्थापक, संचालक और अपने क्षेत्रका कुशल तथा कर्मठ कार्यकर्ता भी है । वह भले ही अब्राहमलिंकनका अपमान कर सकता है, लेकिन उसके गुण और उसकी योग्यता राष्ट्रके लिये हितकर एवं कल्याणकारी हैं । व्यक्तिगत द्वेषभावके आधारपर मैं एक कार्यकुशल व्यक्तिको राष्ट्रसे अलग कैसे कर दूँ ? राष्ट्रको उसकी सेवाओंसे वञ्चित किस प्रकार कर दूँ ? मुझे, लिंकन-भक्त नहीं; 'राष्ट्रभक्त' चाहिये और मुझे विश्वास है कि वह राष्ट्रभक्त है ।'

यह सुनकर राष्ट्रपतिके मित्रगण चुपचाप लौट गये ।

—सुरेन्द्रकुमार ('शक्तिपुत्र'से साभार)

(४)

पिछले जन्मका कर्ज

(एक विचित्र सत्य)

मथुराकी माँट तहसीलके एक ग्राममें एक युवक गम्भीररूपसे बीमार पड़ा । उसकी पत्नीने दिन-रात एककर अपने पतिकी सेवा की । वृद्ध पिताने यथाशक्ति सब जमा-पूँजी खर्चकर पुत्रका इलाज कराया; परंतु कोई लाभ न हुआ । युवक ठीक नहीं हुआ ।

एक दिन पुत्रने पिताको अपने पास बुलाकर कहा कि—'पासके ग्राममें अमुक वैद्यजीसे दवा ले आइये; दवाकी कीमत साढ़े तीन रुपये होगी । उस दवासे मैं ठीक हो जाऊँगा' । पिता पासके उस ग्राममें जाकर वैद्यजीसे दवा ले आया । दवा खाकर युवक सो गया ।

दो-तीन घंटेके बाद पिताने पुत्रको जगाकर उसका हाल जानना चाहा तो पुत्र पितापर बिगड़ उठा और

कहने लगा—'अब न मैं तेरा पुत्र हूँ, न तू मेरा पिता।' पिछले जन्ममें तू एक डाकू था और मेरी यह पत्नी पिछले जन्ममें मेरी घोड़ी थी। एक दिन मैं अपनी घोड़ीपर चढ़ा कहीं जा रहा था। रास्तेमें तूने मुझे लूट लिया था और मेरी हत्या कर दी थी। पिछले जन्मका बदला मैंने इस जन्ममें तेरा बीमार पुत्र बनकर ले लिया है और तेरी सारी कमाई खर्च करा दी है। पिछले जन्ममें मेरी घोड़ीने मुझे संकटमें डालकर तेरे हवाले करा दिया था और जब तूने पास ही खेतकी मेंडपर घासकी गठरी लिये बैठे हुए घसियारेको डरा-धमकाकर उसकी घास मेरी घोड़ीके आगे डलवा दी थी तो मेरे लाख प्रयास करनेपर भी घोड़ी अड़कर खड़ी हो गयी थी; तब तुझे मुझको लूटने और मेरी हत्या करनेका मौका मिल गया। इस जन्ममें भी मैं इसे आज अकेला छोड़कर (विधवा बनाकर) ही जा रहा हूँ। उस घसियारेके साढ़े तीन रुपयोंका कर्जा भी तुझसे अदा करवा दिया है। वह घसियारा ही इस जन्ममें वैद्य है। मैं अब जा रहा हूँ।' और तभी युवकके प्राणपखेरू उड़ गये! [संसार चक्रवत् घूम रहा है, कर्म फल बनकर अवश्य भोग भुगताते हैं। कर्म-व्यवस्थाके नियम सबपर लागू होते हैं। अतः बुरे कर्म कभी न करे।]

—वीरेन्द्रसिंह यादव

(५)

दैवी-प्रेरणावश अनिष्टसे रक्षा

आजसे ठीक दो वर्ष पहलेकी यह घटना है। शनिवार, ११ सितम्बरसे अनवरत वृष्टि हो रही थी। आकाशमें बादल घिरे हुए थे। कभी जोरोंकी बौछारें पड़तीं और कभी फुहारें झड़ने लगतीं। इस प्रकार पानीकी झड़ी बराबर लगी हुई थी। लगातार वर्षासे नदियोंमें बाढ़ आ गयी थी। चारों ओर पानी-ही-पानी दिखलायी पड़ता था। वर्षा रुकनेका नाम ही न लेती थी।

मङ्गलवार, १४ सितम्बरकी शामको मैं भोजन करनेके पश्चात् अपनी पत्नीके कमरेमें गया। दीपक जल रहा था। मेरे दो बच्चे, जिनकी अवस्था उस समय तीन और एक वर्षकी थी, चारपाईपर सो गये थे। कमरेकी दीवालें मिट्टीकी थीं और छत खपरैलकी। उस समय पानी जोरोंसे बरस रहा था। मेरे कमरेमें प्रवेश करते ही ऊपरसे एक खपरैल खिसककर जमीनपर गिरा। सहसा मेरा मन सशङ्क हो उठा एवं किसी दुर्घटना या अनिष्टकी आशङ्का हो गयी। मैंने अपनी पत्नीसे कहा—'न हो तो तुम भी बच्चोंको लेकर भाभीके कमरेमें ही आज रात सो रहो; भाभीका कमरा पक्का है।' इतना कहकर मैं बाहरवाले अपने कमरेमें चला आया और सोनेकी तैयारी करने लगा। मेरी पत्नी प्रायः मेरी बातोंकी उपेक्षा किया करती है, पर न जाने क्यों उसने उस दिन मेरे इस परामर्शका अविलम्ब पालन किया। वह दोनों बच्चोंको लेकर शीघ्र भाभीके कमरेमें सोने चली गयी।

प्रातःकाल लगभग चार बजे बड़े भाई साहबने मुझे यह खबर दी कि वह कच्चा कमरा रातको ढह गया और उसमें रखे हुए सभी सामान प्रायः नष्ट हो गये हैं। मैंने जाकर देखा—ऊपरसे शहतीर गिर पड़ी है, चारपाई टूट गयी है और एक दीवाल भी गिरी पड़ी है। चित्रोंके शीशे चूर-चूर होकर बिखर गये हैं।

मैंने परमपिता परमात्माको धन्यवाद दिया कि उन्हींकी इच्छा तथा प्रेरणासे उस रात हम लोगोंमें सुबुद्धि आयी कि हम सभी वहाँसे हटकर निरापद स्थानोंपर सोने चले गये; अन्यथा जो परिणाम होता उसकी कल्पनामात्रसे ही हृदय काँप उठता है।

[अनिष्टकी आशङ्का आत्माकी सच्ची पुकार होती है। उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये]

—मङ्गलाप्रसाद मिश्र

मनको प्रबोध

तजो रे मन झूठे सुखकी आसा ।
हरि-पद भजो, तजो सब ममता, छोड़ बिषय-अभिलासा ।
बिषयन में सुख सपनेहुँ नाहीं केवल मात्र दुरासा ॥
कामिनि-सुत, पितु-मातु-बंधु, जस कीरति सकल सुपासा ।
छिन महँ होत बियोग सबन्ह ते कठिन काल जग नासा ॥
छन भंगुर सब बिषय, निरंतर बनत कालके ग्रासा ।
इन ... सों कोउ फिर सुख चाहत सो नित मरत पियासा ॥
प्रभु ...-पदुम सदा अबिनासी सेवत परम हुलासा ।
... परम सुख, घटै न कबहूँ, जिन के मन-बिस्वासा ॥

* * *

अरे मन, तू कछु सोच-बिचार ।
झूठौ जग साँचौ करि मान्यौ, भूल्यो फिरत गँवार ॥
मृग-जिमि भूल्यो देखि असत जल, मरु धरनी बिस्तार ।
सून्याकास तिरवरा दीखत, मिथ्या नेत्र-बिकार ॥
रसरी देखि सरप जिमि मान्यो, भय-बस रह्यो पुकार ।
सीप माँहि ज्यों भयो रौप्य-भ्रम, तिमि मिथ्या संसार ॥
स्वप्न-दृश्य साँचे करि मानत, नहिं कछु तिन महँ सार ।
तिमि यह जग मिथ्या ही भासत, प्रकृति-जनित खिलवार ॥
जो यातें उद्धार चहै तो, हरिमय जगत निहार ।
मायापति की सरन गहे तें, होवै तब निस्तार ॥

* * *

रे मन हरि-सुमिरन करि लीजै ॥ टेक ॥
हरि को नाम प्रेम सों जपिये, हरि-रस रसना पीजै ।
हरिगुन गाइय, सुनिय निरंतर, हरि-चरननि चित दीजै ॥
हरि-भगतन की सरन गहन करि, हरिसँग प्रीति करीजै ।
हरि-सम हरि-जन समुझि मनहिं मन तिन कौ सेवन कीजै ॥
हरि केहि विधि सों हम सों रीझैं, सो ही प्रस्न करीजै ।
हरि-जन हरि मारग पहिचानैं, अनुमति देहिं सो कीजै ॥
हरि-हित खाइय, पहिरिय हरि-हित, हरि-हित करम करीजै ।
हरि-हित हरि-सम सब जग सेइय, हरि-हित मरिये-जीजै ॥

—श्रीभाईजी (पद-रत्नाकर-१००४, ७, ७०)

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

भगवान् विष्णुका स्तवन

श्रीशुक उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥
नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥
यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥
श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः॥

(श्रीमद्भागवत २।४।१२, १४-१५, १७-१८, २०)

श्रीशुकदेवजीने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकारकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकरका रूप धारण करते हैं, जो समस्त चर-अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिके विषय नहीं हैं, जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है। जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करनेवाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते, जिनके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्यसे युक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, उन भगवान् श्रीविष्णुको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीविष्णुको बार-बार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान् नारायणको बार-बार नमस्कार है। किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है। जो समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी लक्ष्मीदेवीके पति हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता एवं फलदाता हैं, प्रजाके रक्षक हैं, सबके अन्तर्यामी और समस्त लोकोंके पालनकर्ता हैं तथा पृथ्वीदेवीके स्वामी हैं, जिन्होंने यदुवंशमें प्रकट होकर अन्धक, वृष्णि एवं यदुवंशके लोगोंकी रक्षा की है तथा जो उन लोगोंके एकमात्र सहारे रहे हैं—वे भक्तवत्सल, संतजनोंके सर्वस्व श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों।